मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र

(नवलराय 'वफ़ा' से 'जिगर' तक)

आबिद

काफ़ी

अख़गर

राना

जिगर

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र

(नवलराय 'वफ़ा' से 'जिगर' तक)

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

मुरादाबाद में
ग़ज़ल का सफ़र

(नवलराय 'वफ़ा' से 'जिगर' तक)

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद (उ.प्र.)

ISBN : 978-93-80753-48-5

© लेखक

कृति	:	**मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र**
लेखक	:	**डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन** टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद–244001 मोबाइल : 84105–44252 email : masifh86@gmail.com
आवरण चित्र	:	लेखक
कंप्यूटर टाइपिंग	:	**कंप्यूटर एरा** दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद–244001
संस्करण	:	प्रथम, 2020
मूल्य	:	200/–
प्रकाशक	:	**गुंजन प्रकाशन** लक्ष्मीविहार, हिमगिरि कालोनी, काँठ रोड, मुरादाबाद–244001 मोबाइल : 99273–76877, 98083–15744 email : kknaaz1@gmail.com

---

MORADABAD ME GHAZAL KA SAFAR

BY

DR. MOHD. ASIF HUSAIN

Rs. 200/-

समर्पण

●

मातृभूमि हिंदुस्तान
की पवित्र नदियों
गंगा-यमुना के संगम के नाम
जो
केवल आस्था का केन्द्र ही नहीं
बल्कि
भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतीक भी हैं।

●

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

रहता सुख़न से नाम क़यामत तलक है 'ज़ौक़'
औलाद से रहे, यही दो पुश्त, चार पुश्त
'ज़ौक़ देहलवी'

हम परवरिशे लौह-ओ-क़लम करते रहेंगे
जो दिल पे गुज़रती है रक़म करते रहेंगे
फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'

अनुक्रम

आशंसा : डा. रामानंद शर्मा 9
मुरादाबाद में अदबी क़द्रों की तस्वीर : डा. अजय 'अनुपम' 11
तीन सदियाँ और 128 पृष्ठ : मंसूर उस्मानी 14
ग़ज़ल के इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारी : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 16
आभार-अभिव्यक्ति : डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन 20

भूमिका 24

सत्रहवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल 27
शाह बुलाक़ी 'बोला' या 'बोलन' 28
गुलाम मुस्तफ़ा 'इंसान' 28
मोहम्मद आज़म 'आज़म' 29
इस्मत-उल्लाह 'कामिल' 29
मोहम्मद अनवर 'यकदिल' 29
अट्ठारहवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल 30
लाला नवल राय 'वफ़ा' 32
मीर मुराद अली हैरत 37
मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' 40
परवाना अली शाह परवाना 45
हिदायत अली तम्कीन 46
मोहम्मद बुलाक़ी ख़ाकसार 48
अहमद उद्दीन ख़ाँ इबरत 49
अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के बीच की कड़ी
मीर अली अकबर रिज़वी अज़मत 51
करीम-उद्दीन 'सनअत' 52
उन्नीसवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल 56
मीर आरिफ़ अली 'आरिफ़' 59
महदी अली ख़ाँ 'ज़की' 62
किफ़ायत अली काफ़ी 67
शब्बीर अली ख़ाँ 'तनहा' 68
फ़रीद अहमद 'वफ़ा' 69
कन्हैयालाल ज़ब्त 71

ज़ौक़ीराम 'ज़ौक़ी' 72
देवीप्रसाद 'रब्त' 72
क़ाज़ी ऐहतिशाम-उद्दीन 'फ़रयाद' 72
ब्रजवासीलाल भटनागर 'आसी' 73

मिर्ज़ा ग़ालिब का मुरादाबाद में आगमन 75
मुरादाबाद में ग़ालिब के शागिर्द 76
पण्डित लक्ष्मण नारायण 'मफ़्तूँ' 76
मरदान अली ख़ाँ 'राना' 76
मोहम्मद हुसैन 'तमन्ना' 77
जमशेद अली 'जम' 78
रिज़वान मुरादाबादी 80
मुरादाबाद में ग़ालिब के कुछ परिचित 81

'मोमिन' के शागिर्द
नज्म-उद्दीन 'बर्क़' 82
गुलाम अली ख़ाँ 'वहशत' 83

अन्य प्रसिद्ध शायर
अनवार हुसैन 'तस्लीम' 84
कुँवर किशन कुमार 'वक़ार' 86

मुरादाबाद में दाग़ के शागिर्द
क़ाज़ी शौकत हुसैन 'शौकत' 88
क़ाज़ी अब्दुल अली 'आबिद' 92

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के बीच की कड़ी
अली हुसैन 'सह्बा' मुरादाबादी 95

मुरादाबाद में ग़ज़ल का नुक्ता-ए-उरूज 'जिगर' 98
'जिगर' की शाहेरत क्यों? 98
'जिगर' के काव्य संग्रह 101
'जिगर' का जीवन परिचय 102
'जिगर' का हुलिया और लिबास 107
'जिगर' का शराब पीना और तौबा करना 107
'जिगर' का अख़लाक़ और एहतरामे इंसानियत 110
'जिगर' का पैग़ामे-मोहब्बत 113
'जिगर' के कुछ मशहूर शेर 114

आशंसा

– डा. रामानन्द शर्मा

(पूर्व प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष, हिन्दू कालिज, मुरादाबाद)

प्रिय भाई डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन ने 'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' (नवलराय 'वफ़ा' से 'जिगर' तक) शीर्ष शोधपूर्ण पुस्तक लिखी है, जिसमें मुरादाबाद के सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक के शताधिक ग़ज़लकारों का संक्षिप्त परिचय और उनका चयनित काव्य सम्मिलित किया गया है। लाला नवलराय 'वफ़ा' मुरादाबाद के पहले ग़ज़लकार हैं, जिनका दीवान छपा था। यहाँ से लेकर यह ग़ज़ल यात्रा मुरादाबाद की शान 'जिगर' साहब तक चलती है। 'जिगर' साहब का परिचय तनिक विस्तार की अपेक्षा रखता ही है। नवलराय से लेकर 'जिगर' तक के इस सफ़र के अधिकांश ग़ज़लकार अल्पख्यात ही हैं, जिन्हें आसिफ़ साहब ने पुरानी डायरियों, लेखकीय विवरणिकाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि से खोजबीनकर प्रस्तुत किया है, जो श्रमसाध्य ही नहीं, दुष्कर भी है और उनकी गम्भीर शोधवृत्ति के साथ दुर्दम कर्मठता को भी प्रमाणित करता है। निश्चय ही पुस्तक इतिहास की बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री को सँजोये हुए है और मुरादाबाद की गरिमामयी सांस्कृतिक परम्परा की सुरम्य झलक प्रस्तुत करती है, जिसके निर्माण में जाति और धर्म से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज का योगदान है। लेखक के शोधपूर्ण परिश्रम को नमन करना चाहिये और तब मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है, जब यह ज्ञात होता है कि पाँच सौ से अधिक पृष्ठ वाली मूल पुस्तक 'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' उर्दू में तैयार हो रही है। इससे पूर्व भी वे 'मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर' पुस्तक प्रकाशित करा चुके हैं।

अनेक विलुप्त एवं अल्पख्यात शायरों को सामने लाने वाली यह पुस्तक उर्दू और हिन्दी के ग़ज़लकारों के लिये तो महत्त्वपूर्ण है ही, मुरादाबाद की साँझा साहित्यिक विरासत को भी रेखांकित करती है और लेखक ने उसी निष्पक्ष भाव से, शुद्ध साहित्य-शोध की दृष्टि से, इसकी

रचना की है जो नितान्त प्रशंसनीय है।

मैं आसिफ़ भाई के उच्च एवं उदात्त दृष्टिकोण, कठोर परिश्रम एवं शोधपूर्ण लेखन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ और ईश्वर से कामना करता हूँ कि उनका साहित्य के प्रति समर्पण एवं सेवाभाव इसी प्रकार बना रहे, जिससे उनकी कीर्ति-लता निरन्तर विकसित होती रहे, पल्लवित-पुष्पित होती रहे और सम्पूर्ण साहित्य जगत को सुवासित करती रहे। मैं उनका हृदय से अभिनन्दन भी करता हूँ और अनुज होने के नाते उन्हें आशीष भी प्रदान करता हूँ। इति शम्।

'साहित्यपीठ'
ई-89, वेवग्रीन कालोनी
काँठ रोड, मुरादाबाद-244105
9412506917, 9634752154

मुरादाबाद में अदबी क़द्रों की तस्वीर

– डा. अजय अनुपम

बीते वक़्त के बारे में जानना सब चाहते हैं, क्योंकि सब को अपनी जड़ों से जुड़ने की चाहत रहती है। आदमी जिस देश में रहता है, उसका इतिहास जानना, अपने पुरखों के बारे में जानना और उनकी रुचियों, कार्यों के साथ ही उनकी विरासत को सहेजना, यह सभ्य समाज के विकास का प्रतीक है, लेकिन यह काम अपने आप में बेहद मुश्किल है। बीते समय की घटनाओं को जानने में, शिल्प, कला, साहित्य और संगीत की जानकारी हमारे सामने आती है। इन सभी में भावी पीढ़ी के लिये एक नसीहत छिपी रहती है। इसे हम इतिहास की जानकारी कहते हैं।

यहाँ यह बात कहना ज़रूरी है कि समय के साथ बोली, भाषा और लिपि में अपने आप ही एक बदलाव होता चला जाता है इसीलिये इतिहास लिखने वाला पुराने दौर की भाषा और लिपि को जानकर ही इतिहास की जानकारियाँ जुटाता है, उसके बाद अपने समय की लिपि और भाषा में उसे, प्रमाण और तथ्यों के साथ प्रस्तुत करता है।

मुरादाबाद का साहित्यिक और ऐतिहासिक विवरण सत्रहवीं शताब्दी से सिलसिलेवार मिलना शुरू होता है। जिसकी जानकारी जुटाने में डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन साहब ने बहुत महत्वपूर्ण काम किया है।

मुरादाबाद हिन्दुस्तान की गंगा–जमनी तहज़ीब का मरकज़ है। यहाँ के सूफ़ी–संतों और हिन्दू सन्यासियों ने सामाजिक भाईचारे की जिस परम्परा की नींव डाली थी, उसी के चलते रेख़्ता या हिन्दवी में अरबी–फ़ारसी बहुल शब्दावली और फ़ारसी लिपि में लिख गया विवरण या साहित्य उर्दू अदब का हिस्सा बना और संस्कृत व अन्य बोलियों को समेटते हुए देवनागिरी लिपि में लिखा जाने वाला साहित्य, हिन्दी का साहित्य कहलाने लगा। यहाँ यह जानना बहुत ज़रूरी है कि

दोनों का व्याकरण एक ही है।

लिपि बदलने मात्र से किसी भाषा का मूल भाव और मूल चरित्र नहीं बदलता और यह भी कि समय के प्रवाह में भाषा का बदलता स्वरूप ही किसी संस्कृति की विकास यात्रा और जीवन्तता का परिचय देता है।

सत्रहवीं शताब्दी से 'जिगर' मुरादाबादी के दौर तक के दो सौ शायरों का परिचय देने वाली किताब 'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' तथा 'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' नामक पुस्तक, दोनों से ही मुरादाबाद में अदबी और इंसानी क़द्रों की रिवायत हमारे सामने एक तस्वीर की शक्ल में साफ़ नज़र आने लगती है। इन दोनों किताबों का महत्व शोध कार्य करने वालों और साहित्य में रुचि रखने वालों के लिये तो है ही, आने वाली पुश्तों को अपने पुरखों की जानकारी और मुरादाबाद की सामाजिक एकता के इतिहास की दृष्टि से भी इनका विशेष महत्व होगा।

यूनिवर्सिटी, लायब्रेरी और स्कूलों में पढ़ने और पढ़ाने वालों को अपने यहाँ इन किताबों के लिये जगह निकालनी होगी। इन्हीं से यह भी पता लगेगा कि मुरादाबाद के साहित्यकारों के बिना हिन्दुस्तानी अदब का इतिहास अधूरा है। मुरादाबाद में धर्म-अध्यात्म, लोक-परलोक, पाप-पुण्य, प्रेम-विरह, शत्रु-मित्र और परोपकार की भावना का जो विकास हुआ है, उसे समझने में डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन की इन दोनों पुस्तकों का समाज में स्वागत होगा। भारतीय समाज में एकता और भाईचारे की नींव को मज़बूत करने में इनका योगदान महत्वपूर्ण होगा।

दिनांक- 22 अक्तूबर 2019 ई.

47, श्रीरामविहार, कचहरी
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश-244001
मोबाइल : 9761302577

तीन सदियाँ और 128 पृष्ठ

– मंसूर उस्मानी

'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' नवलराय वफ़ा से जिगर तक यानी सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक, मुरादाबाद के जागरूक एवं विद्वान साहित्यकार व इतिहासकार डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन साहब का ऐसा कारनामा है जिस पर साहित्यिक इतिहास से दिलचस्पी रखने वाले हर शख़्स को नाज़ होना चाहिए क्योंकि अब तक मुरादाबाद की ग़ज़ल जिगर से शुरू होकर जिगर पर ही ख़त्म हो जाती थी। आज तक किसी क़लमकार या साहित्यिक इतिहासकार ने इस तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया कि सुफ़ी संतों की इस सरज़मीन पर कैसे कैसे अदबी नगीने वक़्त की गर्द में दब गये या छुपे हुए हैं। आसिफ़ साहब ने पहली बार इस पर तवज्जोह की और अपनी शोध परक दृष्टि और जादू मिज़ाज क़लम से यह बहतरीन और बेमिसाल कारनामा कर दिखाया है।

उनका पहला कारनामा 'मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर' नामक पुस्तक थी जिसे पढ़कर हमारी नई पीढ़ी को अपने शानदार अदबी अतीत के साथ यह अन्दाज़ा भी हुआ कि उर्दू भाषा और शायरी हमारी साँझा विरासत का अटूट अंग है। इस पुस्तक से आसिफ़ साहब ने कुछ बरसों से सर उठा रही इस ग़लतफ़हमी को भी दूर किया कि भाषाओं का कोई मज़हबी रिशता भी होता है। दुनिया के सारे विद्वान सहमत हैं कि भाषाओं को किसी मज़हब की ज़रूरत नहीं होती बल्कि हर मज़हब को भाषा की ज़रूरत होती है। भाषाएँ अपने लिखने पढ़ने और बोलने वालों के बल पर अपना सफ़र तय करती हैं। आसिफ़ साहब की दोनो पुस्तकों ने बहुत से दिमाग़ों की यह धूल भी साफ़ कर दी, जिसकी नई पीढ़ी के बौद्धिक निर्माण के लिये बहुत ज़रूरत थी।

'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' साहित्यिक इतिहास तो है ही, इस से भाषा का प्राकृतिक सौंदर्य और लचीलापन भी स्पष्ट हुआ और यह भी साबित हुआ कि उसका स्वरूप, उच्चारण और व्याकरण समय के

साथ बदलता रहता है।

तीन सदियों के इस सफ़र को 128 पृष्ठों पर समेटने में कितने परिश्रम, कितनी बौद्धिक क्षमता और कितने शोध-ज्ञान की आवश्यकता होती है, इस से वे लोग बख़ूबी वाक़िफ़ होंगे जो इस रास्ते पर चलते हुए काली रातों को अपनी जागती आँखों से रौशन करने का हुनर रखते हैं।

इस किताब ने जहाँ सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक के, बहुत से फ़नकारों, उनके फ़न और उनकी ग़ज़लों को बीसवीं शताब्दी से रुबरू किया है वहीं साहित्यिक जगत को मुरादाबाद के बहतरीन ग़ज़ल अतीत की भी पहली बार ख़बर दी है। यह बहुत बड़ा कारनामा है। इसके लिए आसिफ़ साहब की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है।

मैं अपने बहुत अज़ीज़ भाई डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन की प्रतिभा और वक़्त की ज़रूरत समझने की उनकी नियत के ख़ुलूस को पूरी ईमानदारी से तस्लीम करता हूँ और इस अभूतपूर्व कारनामे पर दिल की गहराईयों से मुबारकबाद पेश करता हूँ और दुआ देता हूँ कि उनके जज़्बे की जवानी और क़लम की रवानी हमेशा यूँ ही बनी रहे।

दिनांक : 7 नवम्बर 2019

नजमा हाउस, बारादारी
मुरादाबाद-244001
मोबाइल : 98971-89671

ग़ज़ल के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी

– डा. कृष्णकुमार 'नाज़'

वर्तमान में जब सियासत लोगों को मज़हबों, धर्मों और जातियों में बाँटने का काम बाक़ायदा कर रही हो, जब भाषाओं को हिंदू-मुसलमान बनाया जा रहा हो, जब हिंदी को हिंदू और उर्दू को मुसलमान कहकर पुकारा जा रहा हो, जब रोशनी बाँटने वाली मशालें बस्तियों को राख करने पर तुली हों, जब समाज में वैमनस्य की आग लगाई जा रही हो, ऐसे नाज़ुक वक़्त में कोई व्यक्ति अगर अपने सीमित संसाधनों के बावजूद चिराग़ से चिराग़ जलाकर लोगों को रास्ता दिखा रहा हो, उन्हें भटकने से बचा रहा हो, उन्हें सचेत कर रहा हो, उस व्यक्ति को आप क्या कहेंगे? यक़ीनन कुछ उबाऊ प्रवृत्ति के लोग इसे पागलपन का नाम देने से भी नहीं हिचकेंगे। लेकिन, इन सब आलोचनाओं और समालोचनाओं की चिंता से दूर एक शख़्स यही काम कर रहा है। वह समाज में फैली वैमनस्यता की आग पर अपना पसीना छिड़ककर उसे बुझाने की कोशिश कर रहा है। जी हाँ, वो हैं डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन, जो सामाजिक ताने-बाने में अवरोध उत्पन्न कर रही दीवारों को गिराने में व्यस्त हैं।

साहित्य वह है जो सभी के हित साधता हो, जो धर्म विशेष या वर्ग विशेष की अगुआई न करता हो, जो सभी में आसानी से घुल-मिल जाए। और, इसी प्रकार की साहित्य-रचना में व्यस्त हैं भाई आसिफ़ हुसैन। वह जिस काम का भी बीड़ा उठाते हैं, उसे पूरी ज़िम्मेदारी और ईमानदारी के साथ पूरा करते हैं। कुछ दिन पहले उनकी बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक 'मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर' साहित्यिक समाज में सकारात्मक चर्चा का विषय बन चुकी है। इस वक़्त वह 'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' लिखने में व्यस्त हैं, जिसमें मुरादाबाद के ग़ज़ल के प्रारंभ से जिगर से पहले तक के शायरों को सम्मिलित किया गया है। चूँकि यह पुस्तक उर्दू में है, इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों ने हिंदी क्षेत्र को भी मुरादाबाद की

साहित्यिक विरासत और ग़ज़ल के इतिहास के बारे में जानकारी दी जाए। अपनी इसी सोच को विस्तार देते हुए उन्होंने 'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' (नवलराय 'वफ़ा' से 'जिगर' तक) नामक पुस्तक की रचना हिंदी में की है।

यह पुस्तक ग़ज़लकारों और ग़ज़ल के शोधार्थियों के लिए इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें उन्होंने 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी में जिगर साहब के समय तक के महत्वपूर्ण शायरों को उनके संक्षिप्त परिचय और चुनिंदा अशआर के साथ सम्मिलित किया है। 17वीं शताब्दी में उन्होंने पाँच शायरों को शामिल किया है, जिनमें शाह बुलाक़ी 'बोला' या 'बोलन', ग़ुलाम मुस्तफ़ा इंसान, शाह मोहम्मद आज़म 'आज़म', इस्मत उल्लाह कामिल और शैख़ मोहम्मद अनवर 'यकदिल'। इनमें शाह बुलाक़ी 'बोला' के खड़ी बोली में दोहे तो मिलते हैं, किंतु ग़ज़लें नहीं, जबकि अन्य चारों शायरों का कलाम फ़ारसी में है।

पुस्तक में 18वीं सदी के 26 शायरों को शामिल किया गया है। इनमें लाला नवलराय 'वफ़ा', मीर मुराद अली 'हैरत', मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर', मोहम्मद अली 'हशमत, मोहम्मद अली 'शैदा', करीमुद्दीन 'आरज़ू', रफ़ीउद्दीन ख़ाँ 'रफ़ी', ग़ुलाम मुहियुद्दीन 'होश', मिर्ज़ा मोहम्मद अकरम 'आशना', मोहम्मद अली 'आशिक़', हिदायत अली 'तमकीन', मीर आरिफ़ अली 'आरिफ़', मौलवी इस्माईल 'इस्माईल', सैयद हुसैन दोस्त 'ज़ाकिर', परवाना अलीशाह 'परवाना', पीर मोहम्मद 'जुरअत', ग़ुलाम मुहियुद्दीन 'ख़ाकसार', मोहम्मद बुलाक़ी 'ख़ाकार', शुजाउद्दीन ख़ाँ 'शोरीदा', मोहम्मद आज़म 'सूफ़ी', अहमदुल्लाह ख़ाँ 'इबरत', शर्फ़ुद्दीन 'इल्हाम/मलूल', 'अफ़सर', मुकंदलाल 'फ़िदवी', मीर अली अकबर रिज़वी 'अज़मत' और सैयद 'मुनइम' शामिल हैं। आसिफ़ हुसैन साहब के शोध के अनुसार लाला नवलराय 'वफ़ा' मुरादाबाद में ग़ज़ल के पहले शायर हैं, जो जाति से कायस्थ भटनागर थे, जिनका दीवान छपा था।

19वीं सदी में 82 शायरों का ज़िक्र इस पुस्तक में है। जिन शायरों का विवरण और कलाम उपलब्ध हुआ, वह भी दे दिया गया। पुस्तक के अंत में जिगर मुरादाबाद का वर्णन विस्तार से दिया गया है। जिगर साहब का विस्तृत विवरण देने के पीछे मंशा यह है कि आज मुरादाबाद उनके नाम से जाना जाता है। उनके कलाम ने राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर मुरादाबाद को साहित्यिक पहचान दिलाई।

इस पुस्तक में बहुत सारे ग़ैर मुस्लिम शायरों का भी उनके संक्षिप्त जीवन-परिचय और कलाम के साथ वर्णन किया गया है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि उर्दू को सजाने-सँवारने में ग़ैर मुस्लिम साहित्यकारों का भी अनुपम योगदान रहा है। किसी ने उसे साड़ी पहनाई, तो किसी ने उसके उन्नत भाल पर बेंदी लगाई, तो किसी ने उसकी माँग को सिंदूर से सजाया। यानी ज़िंदादिली के साथ उर्दू को गले लगाया। यही वजह है कि उर्दू भारतीय परिवेश में रच-बस गई। अब स्थिति यह है कि अगर हिंदी से उर्दू को निकाल दिया जाए तो हिंदी अपाहिज हो जाएगी और उर्दू से हिंदी को हटा दिया जाए तो उर्दू दम तोड़ देगी। यह पुस्तक ऐसे लोगों के मुँह पर तमाचा है जो हिंदी और उर्दू को धर्म और मज़हब के चश्मों से देखते हैं।

यह पुस्तक उर्दू और हिंदी के ग़ज़ल के शोधार्थियों के लिए इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि आसिफ़ हुसैन साहब ने इसे बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ तैयार किया है। तीन सदियों की ख़ुर्द-बुर्द चीज़ों में से अपने मतलब की सामग्री निकाल पाना कोई हँसी-खेल नहीं है। बोसीदा डायरियों और छूते ही टूट जाने वाले काग़ज़ों के टुकड़ों और किताबों से विवरण इकट्ठा किया गया है।

भाषा दरअस्ल माध्यम है अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने का। गूँगे की अपनी भाषा होती है। वह इशारों के माध्यम से अपनी बात दूसरों तक पहुँचाता है। अनपढ़ व्यक्ति की अपनी भाषा होती है, जो टूटी-फूटी और अरुचिकर हो सकती है। किसी भी भाषा के साथ उसके संस्कार

जुड़े होते हैं। वह जितने पड़ाव तय करती है, उतने ही परिवर्तन उसमें होते रहते हैं। भाषा समय के साथ-साथ संशोधित और परिवर्द्धित होती रहती है। इस पुस्तक से यह भी पता चलता है कि 17वीं शताब्दी की भाषा क्या थी, 18वीं शताब्दी में उसने किस प्रकार अपना रूप बदला और 19वीं शताब्दी में उसमें कितना बदलाव आया। इस पुस्तक में संबंधित ग्रंथों का संदर्भ नहीं दिया गया है। उसका कारण यह है कि डेढ़ सौ पुस्तकों का संदर्भ दिया जाना संभव भी नहीं था और उसका कोई औचित्य भी नहीं था। शोधार्थी संदर्भ के लिए इस पुस्तक का उल्लेख कर सकते हैं। यदि उन्हें किन्हीं कारणों वश मूल पुस्तक का ही संदर्भ देना है, तो वह आसिफ़ साहब की पुस्तक 'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' से उपलब्ध हो जाएगा।

मैं भाई आसिफ़ साहब की मेहनत को सलाम करता हूँ और ईश्वर से कामना करता हूँ कि इस पुस्तक के माध्यम से उनकी प्रसिद्धि और यश में और ज़्यादा इज़ाफ़ा हो। उनका यह जोश हमेशा क़ायम रहे, ताकि वह साहित्यिक समाज को और उत्कृष्ट पुस्तकें देते रहें। हार्दिक बधाइयाँ और साधुवाद।

- 9/3, लक्ष्मीविहार, हिमगिरि कालोनी
काँठ रोड, मुरादाबाद-244105
मो. 99273-76877, 98083-15744
email : kknaaz1@gmail.com

आभार-अभिव्यक्ति

उनका जो फ़र्ज़ है वो अहले सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मोहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे

साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते आरम्भ से ही अपनी जन्मस्थली मुरादाबाद के इतिहास एवं साहित्य में भी विशेष रुचि रही है। जब भी कोई किताब हाथ में आती तो सर्वप्रथम यह जिज्ञासा उत्पन्न होती कि उसमें मुरादाबाद का कोई उल्लेख है या नहीं। अगर उल्लेख मिलता तो उसे रेखांकित कर देता था। जब इस सामग्री को एकत्र किया तो ज्ञात हुआ कि मुरादाबाद के साढ़े तीन सौ वर्ष के इतिहास में सैकड़ों अदीब और शायर गुज़रे हैं, लेकिन आज की पीढ़ी उनके नामों से भी परिचित नहीं है। इसलिये बात जिगर से शुरू होती है और जिगर पर ही ख़त्म हो जाती है। अतः निश्चय किया कि शायरों के विभिन्न किताबों और तज़्किरों में बिखरे हुए कलाम और हालात को, जहाँ तक सम्भव हो, एकत्रित करके एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया जाये। इस प्रकार भविष्य में मुरादाबाद की शायरी की परम्परा पर काम करने वाले शोधार्थियों को आसानी हो जायेगी। यह सोचकर कार्य प्रारम्भ किया और कई वर्ष के शोध के बाद 1625 ई. से 1900 ई. तक लगभग दो सौ शायरों के हालात और कलाम को एकत्रित करने में सफलता मिली। चूँकि यह कार्य उर्दू साहित्य से सम्बन्धित है अतः उर्दू में पाँच सौ बारह पेज की किताब **'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' (आरम्भ से जिगर से पहले तक)** नाम से तैयार हो गयी।

तत्पश्चात यह ख़याल आया कि व्यस्तता के इस दौर में इतनी मोटी किताब पढ़ना हर किसी के लिये सम्भव नहीं। दूसरे यह कि शोधार्थियों के अलावा सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्तियों को भी इस विषय में कोई दिलचस्पी नहीं होती है और जो लोग उर्दू नहीं जानते, उनको तो बिल्कुल ही कोई फ़ायदा पहुँचने वाला नहीं है। अतः क्यों न इस किताब का सारांश हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर दिया जाये। ताकि हर वह व्यक्ति जो मुरादाबाद के साहित्यिक

इतिहास और शायरी के बारे में जानना चाहता है, उसको आवश्यक जानकारी मिल जाये। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक अस्तित्व में आयी, जिसे **'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' (नवलराय वफ़ा से जिगर तक)** के नाम से प्रस्तुत करते हुए हर्ष की अनुभूति हो रही है।

यद्यपि 'तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद' का सारांश लिखने का इरादा था, परन्तु इसमें कुछ ऐसे परिवर्तन होते गये कि यह पुस्तक सारांश मात्र नहीं रह गयी, बल्कि सर्वथा अलग हो गयी, क्योंकि:

(1) मूल पुस्तक में लगभग दो सौ शायरों को वर्णमालानुक्रम में रखा गया था, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में शायरों को कालानुसार क्रमबद्ध किया गया है।

(2) मूल पुस्तक में जिस शायर के बारे में जितनी सामग्री मिली, उसे ससंदर्भ वैसे ही लिखा गया था, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में शायर के सम्बंध में सारगर्भित लिखा गया है।

(3) मूल पुस्तक में हर शायर के बारे में कुछ न कुछ अवश्य लिखा गया था, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में हर काल के शायरों की सूची दी गयी है और केवल प्रमुख प्रतिनिधि शायरों के बारे में ही लिखा गया है।

(4) मूल पुस्तक में शायरों के जितने शेर मिले, सब लिखे गये थे, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में प्रमुख व चयनित शेर लिखे गये हैं।

(5) मूल पुस्तक में जिगर से पहले के शायरों का ज़िक्र था, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में जिगर को भी शामिल किया गया है। साथ ही साथ उन तथ्यों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिनके आधार पर जिगर मुरादाबाद के साहित्यिक इतिहास में अलग पहचान रखते हैं।

(6) मूल पुस्तक में लगभग डेढ़ सौ ग्रंथों के संदर्भ दिये गये थे, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में ऐसा नहीं है। यदि किसी शायर के बारे में कोई संदर्भ चाहिये तो मूलपुस्तक में ही तलाश करना होगा।

(7) मूल पुस्तक में किसी शायर की समीक्षा या आलोचना नहीं की गयी थी, जबकि इसमें समीक्षात्मक एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी

अपनाया गया है।

(8) मूल पुस्तक में उर्दू साहित्य की अन्य विधाओं का वर्णन भी है, जबकि प्रस्तुत पुस्तक में केवल ग़ज़ल पर बात की गयी है। इसलिये इसका नाम 'मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र' रखा गया है।

(9) इस पुस्तक में चरणबद्ध अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला गया है कि :

(क) मुरादाबाद में ग़ज़ल की परम्परा सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में शुरू हुई, जो अट्ठारहवीं शताब्दी में ख़ूब फली फूली।

(ख) नवलराय 'वफ़ा' मुरादाबाद में ग़ज़ल के सबसे पहले शायर हैं, जिनका दीवान प्रकाशित हुआ था।

(ग) उन्नीसवीं शताब्दी में ज़की मुरादाबादी जैसा शायर गुज़रा जिसने सम्पूर्ण भारत में मुरादाबाद का नाम रौशन किया।

(घ) बीसवीं शताब्दी में जिगर जैसा शायर पैदा हुआ जो विश्व में मुरादाबाद की साहित्यिक पहचान बना।

इस कार्य के आरम्भ से अन्त तक कई लोग उत्साहवर्धन करते रहे, अत: उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना फ़र्ज़ समझता हूँ। विशेषत: मेरे साहित्यिक गुरु आदरणीय डा. आरिफ़ हसन ख़ाँ साहब (सेवानिवृत्त उर्दू विभागाध्यक्ष, हिन्दू कालेज, मुरादाबाद) जिनका आशीर्वाद मुझे हमेशा प्राप्त होता रहता है। उनसे इस सम्बंध में निरंतर विचार-विमर्श होता रहा। उनके अतिरिक्त, गुरु तुल्य आदरणीय डा. रामानन्द शर्मा जी (सेवानिवृत्त हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य हिन्दू कालेज, मुरादाबाद), मेरे सरपरस्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शायर आदरणीय श्री मंसूर उस्मानी साहब (चेयरमैन जिगर फ़ाउण्डेशन, मुरादाबाद), हिन्दी साहित्य सदन के वर्तमान प्रबंधक एवं प्रसिद्ध इतिहासविद आदरणीय डा. अजय अनुपम जी के प्रति हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने न सिर्फ़ मौखिक रूप से अपितु क़लम के माध्यम से भी मेरा उत्साहवर्धन किया।

यह पुस्तक आप तक नहीं पहुँचती, यदि मुरादाबाद के सुप्रसिद्ध शायर एवं कवि आदरणीय डा. कृष्णकुमार 'नाज़' साहब का सहयोग प्राप्त नहीं होता। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक की प्रूफ़ रीडिंग की। यही नहीं, बल्कि प्रकाशन के सम्बंध में अपने अनुभव भी साझा किये। साथ ही समीक्षात्मक लेख भी प्रदान किया, जिसके लिये मैं अन्तर्मन से उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

अन्त में सभी पाठकों से अनुरोध है कि यदि पुस्तक में कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे, तो अवश्य अवगत करायें, ताकि आगामी संस्करण में उसे दूर किया जा सके।

2 अक्तूबर 2019

- डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

भूमिका

मुरादाबाद जिस क्षेत्र में स्थित है, उसका इतिहास सदियों पुराना है। पहले यह घने जंगलों से घिरा हुआ इलाक़ा था, जो प्राचीन बस्ती सम्भल के अधीन था। यहाँ अहीर, बड़गूजर आदि की आबादी थी, जो चार गाँवों (दीनदारपुरा, मानपुर, भदौरा और देहरी) पर फैली हुई थी, इसलिये इसे 'चौपला' या 'चौपाला' भी कहा जाता था। इस क्षेत्र का उल्लेख 'कठेर' के नाम से भी मिलता है। 1624 ई. में शाहजहाँ के हुक्म से रुस्तम ख़ाँ दकनी ने इसे बाक़ायदा आबाद किया और अपने नाम पर इसका नाम 'रुस्तम नगर' रखा। इस सम्बंध में यह शेर भी मशहूर है:

इधर रामगंगा उधर रामगाँगन
दो आबे में बस्ता ये रुस्तम नगर है

जब यह ख़बर बादशाह तक पहुँची कि इसका नाम रुस्तम ने अपने नाम पर रखा है, तो उसे दरबार में बुलवा लिया गया। उसने बड़ी होशियारी से कहा कि हुज़ूर मैंने छोटे शहज़ादे 'मुरादबख़्श' के नाम पर इस बस्ती का नाम 'मुरादाबाद' रखा है। तभी से यह इलाक़ा मुरादाबाद के नाम से मशहूर हुआ।

अभी मुरादाबाद आबाद हो ही रहा था कि सामुगढ़ का युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में रुस्तम दाराशिकोह की तरफ़ से जंग करते हुए 25 मई 1658 ई. को शहीद हो गया और मुरादाबाद का विकास अधूरा रह गया। रुस्तम के बाद मुरादाबाद को सियासी रूप से दृढ़ता नहीं मिल सकी और कई लोग यहाँ के हाकिम हुए, लेकिन सबके सब जंगों में घिरे रहे और इस क्षेत्र के विकास पर ध्यान नहीं दे सके। 1717 ई. में मो. मुरादाबख़्श कशमीरी नाम के एक हाकिम को बादशाह की तरफ़ से रुक्नुद्दौला ऐतिक़ाद ख़ाँ की उपाधि देकर मुरादाबाद की जागीर दी गई, उसने सम्भल के बजाय मुरादाबाद को सूबा बनाया और 'रुक्नाबाद' नाम

रखा, जो प्रचलित नहीं हो सका। इस सियासी उठक-पठक का दुष्परिणाम यह निकला कि मुरादाबाद का विकास नहीं हो सका और सर्वाधिक नुक़सान साहित्य को पहुँचा। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उस दौर में कोई साहित्यिक गतिविधि हुई ही नहीं।

भाषा की दृष्टि से मुरादाबाद खड़ी बोली का क्षेत्र है। दिल्ली के नज़दीक होने के कारण मेलों-ठेलों और बाज़ारों, यहाँ तक कि दरबारों में भी यह भाषा बोली और समझी जाने लगी थी। मशहूर भाषाविद एवं साहित्यकार जैसे- ज्ञानचन्द्र जैन, मसूद हुसैन ख़ाँ, प्रो. मोहम्मद हसन और सय्यद ऐहतिशाम हुसैन आदि इस बात पर सहमत हैं कि वर्तमान उर्दू इसी खड़ी बोली का उन्नत रूप है, जिसे अट्ठारहवीं शताब्दी तक हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी या रेख़्ता आदि नामों से पुकारा जाता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी से कुछ पहले इसे उर्दू का नाम दिया गया।

जब मुरादाबाद बसाया गया, उस समय सरकारी भाषा फ़ारसी थी, जबकि दिल्ली दरबार में हिन्दुस्तानी भाषा का सीखना ज़रूरी कर दिया गया था। यह भाषा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों के साथ अरबी व फ़ारसी शब्दों के मिलने से बनी थी, ख़ासतौर पर इसमें खड़ी बोली का हिस्सा सबसे ज़्यादा है। अत: यह बहुत जल्दी आमजन की भाषा ही नहीं बनी, बल्कि उस दौर के बुद्धिजीवियों ने भी इसे अपनाने में देर नहीं की। क्योंकि इस ज़बान से वाक़िफ़ हुए बग़ैर केवल फ़ारसी के सहारे हुकूमत का इन्तज़ाम मुमकिन नहीं रहा था। ख़ुद शाहजहाँ के दरबार में पण्डित चन्द्रभान 'ब्रहमन' जैसे शायर मौजूद थे, जिन्होंने इस भाषा में ग़ज़ल कही। उनके दो शेर प्रस्तुत हैं:

ख़ुदा ने किस शहर अन्दर हमन को लाय डाला है
न दिलबर है, न साक़ी है, न शीशा है, न प्याला है
पिया के नाँव की सिमरन किया चाहूँ, करूँ किससे
न तस्बी है, न सिमरन है, न कण्ठी है, न माला है

मुरादाबाद से क़रीब, दिल्ली दरबार में इतनी सुथरी भाषा बोले जाने

के बावजूद, चौपला के समय इस भाषा में, किसी तरह की साहित्यिक सरगर्मियों का कोई पता न मिलना हैरानी की बात है। अत: हम अपनी बात उस वक़्त से शुरू करेंगे, जब इस क्षेत्र को मुरादाबाद के नाम से बाक़ायदा बसाया गया।

चूंकि उर्दू साहित्य की सारी विधाओं में ग़ज़ल को सर्वाधिक लोकप्रियता हासिल है। इसे उर्दू शायरी की आबरू भी कहा जाता है। उर्दू में ग़ज़ल फ़ारसी से आई और इसका जादू ऐसा सर चढ़कर बोला कि आज ग़ज़ल हिन्दुस्तानी सभ्यता एवं संस्कृति का अनमोल ख़ज़ाना अपने अन्दर समोये हुए है। ग़ज़ल की एक बड़ी ख़ूबी यह भी है कि ज़िदगी जब और जिस शक्ल में बदली ग़ज़ल ने उसका साथ निभाया। कभी ग़ज़ल ज़िन्दगी का आईना बनी और कभी ज़िन्दगी को आईना दिखाया। अर्थात् ग़ज़ल हालात के अनुसार ढल जाती है। दूसरे यह कि जिस बात को कहने के लिये दफ़्तर चाहियें, अगर सलीक़ा हो तो वह बात ग़ज़ल के एक शेर में कही जा सकती है। तीसरे यह कि जिस बात को सामने से कहना मुश्किल हो, उसे ग़ज़ल में इशारों के माध्यम से आसानी से कहा जा सकता है। यही कारण है कि अन्य विधाओं की अपेक्षा ग़ज़ल में लोगों की रुचि ज़्यादा होती है और ग़ज़ल के शायर भी ज़्यादा मिलते हैं। मुरादाबाद में भी यही स्थिति देखने को मिलती है। अत: हमने अपनी बात को ग़ज़ल तक ही सीमित रखा है।

यह संयोग ही कहा जायेगा कि ग़ज़ल का विकास भी उसी समय शुरू हुआ, जब मुरादाबाद आबाद हुआ, यानी 17वीं शताब्दी में। जब अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वली का दीवान दकन से निकलकर दिल्ली पहुँचा तो उत्तर भारत में ग़ज़ल की बयार बहने लगी। उसी समय मुरादाबाद में भी ग़ज़ल ने तरक़्क़ी की।

मुरादाबाद में सत्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होने वाली ग़ज़ल की यात्रा जब बीसवीं शताब्दी में प्रवेश करती है तो हमें जिगर जैसा शायर मिलता है, जो मुरादाबाद की साहित्यिक पहचान बना। इस यात्रा में क्या-क्या

उतार-चढ़ाव आये और जिगर के अतिरिक्त कौन-कौन से शायर हुए जिन्होंने यहाँ ग़ज़ल की परम्परा को परवान चढ़ाया, इसका चरणबद्ध अध्ययन करने के लिये मुरादाबाद के साहित्यिक इतिहास को चार शताब्दियों में बाँटा जा सकता है:

(1) सत्रहवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल
(2) अट्ठारवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल
(3) उन्नीसवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल
(4) बीसवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल

बीसवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल का विकास बहुत तेज़ी से हुआ, जिस पर अलग से लिखे जाने की आवश्यकता है। चूँकि इस काल में मुरादाबाद को जिगर जैसा शायर मिला, जो सारे विश्व में मुरादाबाद की साहित्यिक पहचान है। अत: मुरादाबाद में ग़ज़ल के सफ़र को 'जिगर' पर ख़त्म किया गया है।

सत्रहवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल

जब मुरादाबाद बसाया गया तो उस समय कई बुज़ुर्ग, पीर-फ़क़ीर भी यहाँ आये, जैसे-शाह इब्राहीम, शाह मोहम्मद शफ़ी, शाह मेहर अली नेशापुरी और शाह ग़रीब वगैरा। यक़ीनी तौर पर उन्होंने संवाद के लिये यहाँ की स्थानीय भाषा यानी खड़ी बोली को ही माध्यम बनाया होगा, लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। शाह इब्राहीम साहब के प्रवचनों के मज्मूए 'कशफ़ुल असरार' का नाम ज़रूर मिलता है, जो उनके किसी शागिर्द ने तैय्यार किया था। लेकिन वह उपलब्ध नहीं।

यदि उस दौर की साहित्यिक सरगर्मियों को सम्भल के इतिहास के आईने में देखें तो सय्यद कमाल वास्ती (जन्म 1602 ई),जो रुस्तम की फ़ौज में थे और उन्होंने मुरादाबाद में काफ़ी वक़्त गुज़ारा, की किताब 'असरारिया कशफ़े सूफ़िया' जोकि फ़ारसी में है, में खड़ी बोली और फ़ारसी के कुछ नमूने मिलते हैं। उसी में उनकी एक किताब "पेम चरित" का उल्लेख भी मिलता है। जिसके दो शेर प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

अहमद समदा पार है जो ज़ात की नात
तामें लहरें पेम की निसदिन आवत जात
वहदत मोंह वो एक है कसरत में मोंह वो सब
आपे आप जहाँ तहाँ न कोई पूत न बाप

उपरोक्त पंक्तियों में उस दौर की भाषा का स्वरूप साफ़ तौर पर देखा जा सकता है।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हमें निम्नलिखित पाँच नाम और नज़र आते हैं:

(1) शाह बुलाक़ी 'बोला' या 'बोलन'
(2) ग़ुलाम मुस्तफ़ा 'इंसान'
(3) शाह मोहम्मद आज़म 'आज़म'
(4) इस्मत-उल्लाह 'कामिल'
(5) शैख़ मोहम्मद अनवर 'यकदिल'

(1) **हज़रत शाह बुलाक़ी 'बोला'** (मृत्यु 1726 ई.):-मुरादाबाद के मशहूर सूफ़ी बुज़ुर्ग हज़रत शाह बुलाक़ी साहब, जिनकी दरगाह चक्कर की मिलक में आज भी अनेकता में एकता का केंद्र बनी हुई है। हज़रत 'शाह बुलाकी' मुरादाबाद के पहले शायर हैं, जिन्होंने फ़ारसी और खड़ी बोली के मेलजोल से अपने जज़्बात और उपदेशों को ख़ालिस हिन्दुस्तानी रंगो-आहंग में दोहों की शक्ल में इस तरह पेश किया है-

मरने से सब जग डरे, पंछी और सब जीव
'बोला' सुन नहजो बह्यो, मरे मिलत हैं पीव

\+ + +

'बोला' भूला क्या फिरे, मन को किये उदास
साईं मन में यूँ बसें, ज्यों फूलन में बास

\+ + +

'बोला' भूला क्या फिरे, अब भी तो टुक चेत
बिन जोते बिन बाह दिये, बीज न लेवत खेत

\+ + +

सारन बिरहन मोह मिली, करते अपना काज
ओह अखट हों यूँ सुने, लियो पी आज प्याज

कमाल वास्ती के कलाम और शाह बुलाक़ी साहब के दोहों के तुलनात्मक अध्ययन से मालूम होता है कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यहाँ की भाषा काफ़ी हद तक निखर चुकी थी। दूसरे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस समय आम जन इस भाषा का प्रयोग करते होंगे, क्योंकि साधु-संतों की विशेषता रही है कि, वह उसी भाषा का प्रयोग करते है, जो उनके मुरीद या शिष्य समझते हैं। विशेषत: उर्दू भाषा का तो विकास ही सूफ़ियों से हुआ माना जाता है।

(2) **शाह ग़ुलाम मुस्तफ़ा 'इंसान मुरादाबादी'**:-शाह ग़ुलाम मुस्तफ़ा मुरादाबाद में मंसबदार थे। आज़ाद बिलग्रामी ने अपनी पुस्तक 'सर्वे आज़ाद' में लिखा है कि वह हिन्दी ज़बान में भी शेर और दोहे ख़ूब कहते थे। उस दौर के हिन्दी के उस्ताद शायर आपके कलाम से वाक़िफ़ थे और बहुत से लोग अपनी किताबों और दोहों पर इस्लाह लेते

थे। लेकिन इनके हिन्दी या खड़ी बोली के कलाम का कोई नमूना हमारे सामने नहीं है। सिर्फ़ फ़ारसी कलाम के नमूने ही मौजूद है।

इनका इन्तेक़ाल 1729 ई. अचलपुर (ज़िला अमरावती, महाराष्ट्र) में हुआ, वहीं इनका मज़ार है।

(3) **शाह मोहम्मद आज़म 'आज़म':** स्प्रिंगर ने लिखा है कि शाह मोहम्मद आज़म सन्दीला के रहने वाले, सिपाही थे, बाद में नौकरी छोड़कर फ़क़ीर हो गये थे और मुरादाबाद में रहकर गोशानशीनी (एकांतवास) की ज़िन्दगी गुज़ारते थे। उन्होंने फ़ारसी और रेख़्ता (उर्दू का पुराना नाम) में नज़्में कही थीं, लेकिन उनको लिखते नहीं थे।

(4) **इस्मत-उल्लाह 'कामिल':** इस्मत-उल्लाह 'कामिल' मुरादाबाद में बादशाह की तरफ़ से मंसबदार थे, लेकिन इनका भी रेख़्ता में कोई शेर नहीं मिल सका। तज़्किरा 'रोज़े रौशन' में सिर्फ़ फ़ारसी का एक शेर लिखा हुआ है।

(5) **मोहम्मद अनवर 'यकदिल':** इनके पिता का नाम मुहम्मद जान था, जो मुरादाबाद में दारोग़ा थे। 'यकदिल' शेरो शायरी ख़ूब करते थे। 'तज़्किरा महबूब-उ़ज़-ज़मन' में इनके सात फ़ारसी के शेर लिखे हुए हैं, लेकिन उर्दू का कोई नमूना नहीं दिया है। इनकी मृत्यु 1739 ई. में हुई।

निश्चित रूप से और भी बहुत से नाम होंगे, जो गर्दिशे-वक़्त से इतिहास में सुरक्षित नहीं रह सके या वहाँ तक हमारी पहुँच नहीं हो सकी।

उपरोक्त सभी शायरों के बारे में लिखा हुआ मिलता है कि ये हिन्दवी यानी उर्दू में शायरी करते थे। इनकी उर्दू शायरी का नमूना न मिलने की वजह यह भी हो सकती है कि उस वक़्त तक उर्दू में शायरों का तज़्किरा लिखने का चलन नहीं हुआ था। सिर्फ़ फ़ारसी शायरों के तज़्किरे ही लिखे जाते थे। उर्दू में तज़्किरा लिखने का चलन 'मीर त़की मीर के तज़्किरे 'निकात-उश-शोअरा'(1752 ई.)से माना जाता है।

यह तो निश्चित है कि सत्रहवीं शताब्दी के आख़िर में मुरादाबाद में उर्दू शायरी शुरू हो चुकी थी। अगर ऐसा नहीं होता तो अट्ठारहवीं शताब्दी में इतने शायरों का ज़िक्र मिलना संभव नहीं था, जो अग्रलिखित है।

अट्ठारहवीं शताब्दी में मुरादाबाद में ग़ज़ल

1717 ई. में रुक्न-उद्-दौला ऐतक़ाद ख़ाँ को मुरादाबाद की जागीर दी गई तो उसने सम्भल के बजाय मुरादाबाद को सूबा बनाया। अतः मुरादाबाद स्वतः ही साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र भी बन गया। दूसरे यह कि उस वक़्त अज़मत-उल्लाह ख़ाँ फ़ारूक़ी यहाँ के नायब थे, जो 1726 ई. में यहाँ के बाक़ायदा जागीरदार बनाये गये। वह बल्ख़ के एक शैक्षिक एवं साहित्यक घराने से ताल्लुक रखते थे और लखनऊ से यहाँ आये थे। इनकी औलादों में भी बड़े-बड़े शायर और साहित्यकार पैदा हुए। अतः उस दौर की शैक्षिक व साहित्यिक सरगर्मियों में तेज़ी आना स्वाभाविक था।

अट्ठारहवीं शताब्दी में उर्दू शायरी का चलन आम हुआ। 1722 ई. में वली दकनी का दीवान दिल्ली पहुँच कर लोकप्रिय ही नहीं हुआ, बल्कि उसने उर्दू शायरी में एक हलचल पैदा करदी थी। यह दौर यूँ भी अहम है कि मीर तक़ी 'मीर', 'मुस्हफ़ी अमरोहवी' और 'क़ायम चाँदपुरी' जैसे शायर इसी युग की देन हैं। ख़ासतौर पर 'मुस्हफ़ी' और 'क़ायम' तो मुरादाबाद के पड़ोसी थे, इनके कुछ शागिर्द भी इस शहर में मौजूद थे। अलबत्ता मीर का कोई शागिर्द यहाँ नज़र नहीं आता, लेकिन मीर को अपना उस्ताद मानने वालों में 'होश मुरादाबादी' का ज़िक्र ज़रूर मिलता है। इस तरह यहाँ एक अच्छा साहित्यिक वातावरण तैयार हो गया था। यही वजह है कि यहाँ ऐसे शायरों की काफ़ी तादाद नज़र आती है जिन्होंने उस दौर में शोहरत हासिल करली थी, जिसका सुबूत उस दौर में लिखे गये तज़्किरे हैं, जिनमें उन शायरों के नाम लिखे हुये मिलते हैं। उनमें से कुछ प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं:

1. लाला नवलराय 'वफ़ा' (मृत्यु 1750 ई.)
2. मीर मुराद अली 'हैरत' (मृत्यु 1771 ई.)
3. मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' (मृत्यु 1774 ई.)
4. मोहम्मद अली 'हशमत' (मृत्यु 1774 ई.)

5. मोहम्मद अली 'शैदा' (मृत्यु 1780 ई.)
6. करीमुद्दीन 'आरज़ू' (मृत्यु 1800 ई.)
7. रफ़ीउद्दीन ख़ाँ 'रफ़ी' (मृत्यु 1804 ई.)
8. ग़ुलाम मुहियुद्दीन 'होश' (मृत्यु 1812 ई.)
9. मोहम्मद अकरम 'आशना' (मृत्यु 1817 ई.)
10. मोहम्मद अली 'आशिक़' (मृत्यु 1819 ई.)
11. हिदायत अली 'तम्कीन' (मृत्यु 1820 ई.)
12. मीर आरिफ़ अली 'आरिफ़' (मृत्यु 1831 ई.)
13. मौलवी इस्माईल 'इस्माईल' (मृत्यु 1837 ई.)
14. सय्यद हुसैन दोस्त 'ज़ाकिर'
15. परवाना अलीशाह 'परवाना'
16. पीर मोहम्मद 'जुरअत'
17. ग़ुलाम मुहियुद्दीन 'ख़ाकसार'
18. मोहम्मद बुलाक़ी 'ख़ाकसार'
19. शुजाउद्दीन ख़ाँ 'शोरीदा'
20. मोहम्मद आज़म 'सूफ़ी'
21. अहमदुल्लाह ख़ाँ 'इबरत'
22. शर्फ़ुद्दीन 'इल्हाम/मलूल' (1794 ई. में 60 वर्ष के थे)
23. 'अफ़सर'
24. मुकन्दलाल 'फ़िदवी' (1794 ई. में 50 वर्ष से ज़्यादा उम्र थी।)
25. मीर अली अकबर रिज़वी 'अज़मत' (1806 ई. में 40 वर्ष के थे)
26. सय्यद 'मुनइम'

उपरोक्त सूची में कई नाम ऐसे भी हैं जिनका कोई जीवन परिचय नहीं मिल सका, एक-आध शेर मिला, और कई ऐसे हैं जिनका थोड़ा बहुत परिचय मिला, कलाम नहीं मिल सका। कुछ शायर वे हैं जिनका परिचय एवं कलाम दोनों उपलब्ध हो गये। उनमें से कुछ प्रमुख शायरों का संक्षिप्त विवरण यहाँ लिखा जा रहा है-

मुरादाबाद में ग़ज़ल का पहला साहिबे दीवान शायर
लाला नवलराय 'वफ़ा'

सत्रहवीं शताब्दी में जिन शायरों का तज़्किरा हुआ, वे फ़ारसी के थे। उर्दू ज़बान के हवाले से शाह बुलाक़ी साहब के दोहे मिलते हैं, ग़ज़ल नहीं मिलती। अत: उन्हें मुरादाबाद में उर्दू का पहला शायर कहा जा सकता है। लेकिन नवलराय से पहले मुरादाबाद में ग़ज़ल का कोई दूसरा शायर नज़र नहीं आता इसलिये यह कहने में कोई झिझक नहीं कि नवलराय 'वफ़ा' मुरादाबाद में ग़ज़ल के पहले शायर हैं। जिनका दीवान छपा था।

राजा नवलराय क़ौम के कायस्थ भटनागर थे। मुरादाबाद के रहने वाले थे। क़ायम चाँदपुरी के अनुसार नवलराय के बड़े भाई, और कुछ दूसरे तज़्किरों के अनुसार नवलराय के चाचा राजा गुलाब राय, नवाब नजीब-उद्-दौला के दीवान और मदारुलमुहाम (सर्वेसर्वा) थे। ख़ुद राजा नवलराय भी रामगंगा नदी के किनारे कुछ परगनों की तहसील वसूली पर तैनात थे। सय्यद रफ़ीक़ अहमद मारहरवी ने अपने मज़मून ('ज़माना' माह जुलाई 1940 ई.) में लिखा है कि राजा साहब के बाप-दादा इटावा के ख़ानदानी क़ानूनगो थे। उनका इब्तिदाई ज़माना राजा रतनसिंह 'ज़ख़्मी' बरेलवी के पास गुज़रा। अपनी ज़ाती क़ाबिलियत और कारकर्दगी (कार्यशैली) की बदौलत नवलराय भी राजा हुए। अहमदशाह के दौरे-हुकूमत (1748ई. से 1754 ई.) में अबुल मंसूर सफ़दरजंग को अवध और इलाहाबाद की सूबेदारी मिली तो राजा नवलराय दोनों सूबों में उनके नायब (सहायक) रहे।

लाला नवलराय 10 रम्ज़ान 1163 हिजरी (12 अगस्त 1750 ई.)में एक जंग में शहीद हुए।

जिगर बरेलवी ने उनको मीर तक़ी मीर पर वरीयता देने की कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि-

''आज अगर उनका (नवलराय 'वफ़ा' का) दीवान 'मीर' के कुल्लियात की तरह हमारी नज़र के सामने होता तो यह अंदाज़ा

करने का मौक़ा था कि जिस रंगे शायरी को 'मीर' से मंसूब (सम्बद्ध) किया जाता है, उसका सर-चश्मा (स्रोत) किसके यहाँ से निकला।''

हालाँकि जिगर बरेलवी का ऐसा कहना अतिशयोक्ति से ज़्यादा कुछ हैसियत नहीं रखता, लेकिन इससे किसी न किसी दर्जे में 'वफ़ा' के शायराना क़द का अन्दाज़ा तो होता ही है। ।

राजा नवलराय शायरी में क़ायम चाँदपुरी के शागिर्द थे। क़ायम चाँदपुरी ने अपने तज़्किरे 'मख़्ज़ने-निकात' में उनका ज़िक्र इस तरह किया है-

अनुवादः ''लाला नवलराय मु-तख़ल्लुस 'वफ़ा' नौ-उम्र जवान (नवयुवक) हैं। तमाम ख़ूबियों के मालिक हैं। जिद्दते-ज़ह्न (नवीनता), जोदते-फ़हम (प्रबुद्धता), असाबत-राय (मत की प्रबलता) लताफ़ते मिज़ाज (स्वभाव में कोमलता), ब-मर्तबा-ए-अतम (अच्छे से अच्छा) रखते हैं। उनके ब्रादरे बुज़ुर्ग (बड़े भाई) राजा गुलाबराय अमीर-उल-उमरा (अमीरों के अमीर) नवाब नजीबुद्दौला बहादुर के दीवान हैं और 'वफ़ा' साहब गंगा नदी के बाज़ (कुछ) परगनों की तहसील वसूली में मसरूफ़ (व्यस्त) हैं। हर कमाल (प्रवीणता) को तलब (प्राप्त) कर रहे हैं।''

कलाम का नमूना

होने को दिल सहज ही गिरफ़्तार हो गया
अब छूटना ये ज़ुल्फ़ से दुश्वार हो गया
समझे सफ़ा-ए-शुस्त तेरी चश्म को वही
जिसके जिगर से तीरे-निगह पार हो गया
ऐसे मिज़ाज भी कहीं देखे हैं ऐ 'वफ़ा'
क्या बात थी जो रात वो बेज़ार हो गया

\+ + +

आरिज़ पे तुम्हारे यह पसीना
हीरे का है लाल पर नगीना

ग़म में भी अगर रहा सलामत
पत्थर से भी सख़्त है यह सीना

+ + +

उसको मंज़ूर याँ से जाना था
गिरिया मेरा फ़क़्त बहाना था
दिल न करना था इस तरह से ख़राब
आकि़बत वो तेरा ठिकाना था

+ + +

याँ तक अज़ ख़्वेश रफ़्ता हूँ कि मुदाम
आप करता हूँ मैं सुराग़ अपना

+ + +

हबाब आसा न फूल हस्ती पे अपनी
कि ग़ाफ़िल क्या भरोसा है नफ़स का

+ + +

बुत से लेते हैं कारे-हक़ हज़रत
शेख़ टुक देख ऐतक़ादे-हुनूद

+ + +

होवेगा दिल से महवे-ग़मे-यार कब तलक
क्यों हमनशीं ये जायेगा आज़ार कब तलक

+ + +

बस कि अपने इंक़लाबे-बख़्त से डरते हैं हम
बिस्तरे-गुल पर भी लरज़ाँ ही क़दम धरते हैं हम
कल का वादा कर गया उनसे जो ऐ महरम तो क्या
याँ तो बेताबी से दिल की आज ही मरते हैं हम

+ + +

बेचे है इक निगाह पे दिल के तईं 'वफ़ा'
लेना हो गर तुम्हें तो कुछ इतना गिराँ नहीं

+ + +

अपनी ही चश्म के तईं ताबे नज़र नहीं
वरना वो आफ़ताब कहाँ जलवागर नहीं

+ + +

साथ तुझसे के अगर महरो-वफ़ा की हमने
अफ़्व कर अफ़्व कि ऐ शोख़ ख़ता की हमने
उक़्दे पर उक़्दे किये चर्ख़ ने मज़बूत अगर
इक गिरह रिश्ता-ए-मक़सूद से वा की हमने
डर है उस वक़्त का ज़ालिम कि लहू बल मुँह से
जिस घड़ी रू ब-फ़लक होके दुआ की हमने

+ + +

दिल तो कहे है जी में गिरफ़्तार कीजिये
यानी किसी सनम के तईं प्यार कीजिये
गर माँगता है जी के तईं दीजिये 'वफ़ा'
क्या चीज़ है कि दोस्त से इनकार कीजिये

+ + +

अदम के जाने से क्या हैफ़ है अज़ीज़ाँ के
कि कूच उधर ही को है सुब्हो-शाम अपना भी

+ + +

फ़िर दमे सर्द जो दिल हो न सके गर्मे-फ़ुग़ाँ
शग़्ल थोड़ा भी भला होवे है बेकारी से
कूचा-ए-इश्क़ की है राह ख़तरनाक 'वफ़ा'
जो क़दम याँ तू रखे यार तो हुशियारी से
किस गुले-ताज़ा ने इस बाग़ में की जलवागरी
हम ज़रे-दाग़ से जिसके न ख़रीदार हुए

+ + +

जूँ अश्क न फिर उठा ज़मीं से
या रब मैं गिरा हूँ किस नज़र से

आने का मेरे वो सुनके चर्चा
निकला न तमाम रोज़ घर से

+ + +

क्यों तू करता है गोर से नफ़रत
आख़िर इक दिन वही ठिकाना है

+ + +

इश्क़ में इम्तियाज़े-रुतबा नहीं
ख़ाकपा-ए-अयाज़ है महमूद

+ + +

पूछो हो क्या कि हाल तेरा किस तरह से है
क्या जानते नहीं हो मियाँ जिस तरह से है

+ + +

है जलवागर वो हम में, पर आलूदगी से दूर
जिस तरह् अक्स आब में हो माहताब का

+ + +

देना तो दिल न आपको मक़सूद था वलेक
जब मिल गई ये आँख मैं नाचार हो गया

'वफ़ा' के कलाम को देखने से अन्दाज़ा होता है कि उनकी ज़बान साफ़, सादा और सरल है। शेरों में उनकी अपने मन की बात कहने के अलावा सोज़ो-गुदाज़ (मर्म) भी पाया जाता है। साथ ही यह अन्दाज़ा लगाना भी मुश्किल नहीं कि उनका झुकाव तसव्वुफ़(सूफ़ीज़्म) की तरफ़ भी था। 'वफ़ा' की ज़बान में फ़ारसी के अल्फ़ाज़ ज़्यादा मिलते है जो उनकी उस ज़बान पर पकड़ और उस दौर के माहौल को दशार्ते हैं, इसके बावजूद उनकी ज़बान वही है जो आज हम और आप बोलते हैं। अगर कहीं-कहीं कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ मिलते हैं जो अब चलन में नहीं हैं, तो यह कोई ऐब नहीं, बल्कि ऐसा होना स्वभाविक है। जैसे: सहज (आसान) या तलक (तक), तईं (वास्ते) या तुझसे के (तुझ जैसे के) वग़ैरा।

मीर मुराद अली 'हैरत'

मीर मुराद अली का तख़ल्लुस 'हैरत' है। कहीं 'हैदर' और कहीं 'हसरत' भी लिखा हुआ मिलता है। ज़्यादातर तज़्किरा निगारों ने लिखा है कि मुरादाबाद के रहने वाले थे। क़ुदरतुल्लाह 'शौक़' ने लिखा है कि यह दिल्ली के रहने वाले थे, मुरादाबाद में आकर बस गये थे।

विभिन्न तज़्किरों से मालूम होता है कि 'हैरत' आज़ाद पसन्द, दर्दमन्द, ख़ुश मिज़ाज, मिलनसार और विनम्र स्वभाव के कारोबारी इंसान थे। जब कारोबार से फ़ुरसत मिलती तो शायरी करते थे। इसीलिये बहुत ज़्यादा कलाम नहीं मिलता, फिर भी इन्हे अपने वक़्त का उस्ताद शायर माना जाता है।

'हैरत' अपने कारोबारी सिलसिले में सफ़र करते रहते थे। एक बार जब वह सफ़र पर गये तो लौटकर नहीं आये। इसकी कोई निश्चित तारीख़ नहीं मिल सकी। बस यह कहा जा सकता है कि यह 1771 ई. और 1774 ई. के बीच की घटना है। किसी ने लिखा है कि वह पहाड़ की तरफ़ गये थे, वहाँ अचानक मृत्यु हो गई। किसी ने लिखा है कि फ़र्रुख़ाबाद जा रहे थे, रास्ते में मऊ में मृत्यु हुई, तो कोई लिखता है कि रास्ते में डाकुओं ने उन्हें मार डाला।

'हैरत' शायरी में ख़्वाजा मीर दर्द के शागिर्द थे। इसीलिये इनकी शायरी में तसव्वुफ़ (सूफ़ीज़्म) का रंग ज़्यादा झलकता है, वहीं दूसरी तरफ़ लखनवी रंग की झलकियाँ भी देखने को मिलती है। वह अल्फ़ाज़ का चयन बड़ी होशियारी व देखभाल से करते हैं और बहुत एहतियात के साथ उनका इस्तेमाल करते हैं। उनके यहाँ तश्बीह, इस्तेआरा, सनाए व बदाए (शब्दालंकार, अर्थालंकार, उपमा, रूपक आदि) का प्रयोग भी ख़ूब मिलता है। इसके बावजूद उनकी ज़बान साफ़ और सादा है, मुश्किल अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल नहीं करते, बल्कि आसान और आम लोगों की ज़बान इस्तेमाल करते थे।

मुराद अली हैरत के मुरादाबाद में निम्नलिखित चार शागिर्दों के नाम

मिलते हैं:

(1) पीर मोहम्मद 'जुरअत'
(2) अली मोहम्मद ख़ाँ 'जोदत'
(3) नवाब मोहम्मद मियाँ 'हरमाँ'
(4) परवाना अली शाह 'परवाना'

कलाम का नमूना

नज़र आया यह जहाँ नक़्श बर-आब आख़िरकार
ताज है सर पर से गिरा मिस्ले हबाब आख़िरकार

+ + +

क्या क़ाफ़िले यारों के आगे कहीं ठहरे हैं
आवाज़े जरस कम है या कुछ हमीं बहरे हैं

+ + +

अब छोड़ कर कनिश्त जो काबे को जाइये
वाँ भी यही सनम हो तो क्या मुँह दिखाइये

+ + +

रूबरू क़ातिल के हो न, तुझको ऐ दिल काम क्या
दूर से कर ले तमाशा सुब्ह क्या और शाम किया
मुझको हैरत है कि मैं जब हो चुका हूँ जाँ-ब-लब
आज ज़ालिम पूछता है मुझसे, मेरा काम क्या

+ + +

क्या पूछते हो ज़ुल्फ़े सियाह मन में डसी है
याँ जान चली जाती है और उसकी हँसी है
है शादी-ए-मर्ग अपने भी दिल में तो वलेकिन
क्या जानिये क़ातिल ने कमर किस पे कसी है

+ + +

ज़ाहिद की लड़कपन से जो बिगड़ी है तबीयत
पीरी में भी खाता है वो आसी के सहारे

+ + +

इतनी ही आरज़ू है कि यह बात पूछ लूँ
ज़ालिम तू मुझसे अब तो भला बदगुमाँ नहीं

+ + +

ये दिल फ़िराक़ के सदमों से तेरे मर न गया
तिरे मरीज़ का ऐ जान दर्दे सर न गया

+ + +

कब आवे नज़र जल्वा-ए-दीदार सनम का
पर्दा न उठे दिल से अगर दैरो-हरम का
क्या कहिये तिरे हुस्ने-ख़ुदादाद की ख़ूबी
हैरत है न मक़दूर ज़बाँ का न क़लम का

+ + +

ऐ चर्ख़ अगर ज़िन्दगी ए ख़िज़्र जियूँ मैं
तुझसे तो कभी माँग के पानी न पियूँ मैं
कहते हैं कि कल ईद का दिन है वो मिलेगा
पर देखिये कल तक जियूँ भी या न जियूँ मैं

+ + +

हम उस बज़्म से यूँ परेशान निकले
जवानी में जिस तर्ह से जान निकले

+ + +

हश्र के दिन जो तिरे जोर अगर याद रहे
जब मज़ा हो कि हमें ताक़ते फ़रयाद रहे
हमतो इक शीशा-ए-साअत की तरह से 'हैरत'
ख़ाक छाना किये दुनिया में और आज़ाद रहे

+ + +

हैरत की शायरी पूरी तरह से देहलवी रँग में रँगी हुई है। मुश्किल अल्फ़ाज़ नहीं मिलते। लेकिन मुश्किल रदीफ़ और क़ाफ़िये ज़रूर मिलते है। फ़ारसी शब्दों के साथ मुहावरों और मिसालों का इस्तेमाल बड़ी सुंदरता के साथ मिलता है।

मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर'

मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' अली मुहम्मद ख़ाँ रोहेला के चौथे बेटे थे। 1736-37 ई. में आँवला में पैदा हुए। अरबी, फ़ारसी और उर्दू ख़ूब अच्छी तरह जानते थे। शम्स बदायूँनी ने लिखा है कि:

"मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' की हैयिसत एक रईस की थी और उनकी आरास्ता की गई बज़्मे-सुख़न उनके ज़ाती (निजी) ज़ौक़ो-शौक़ की तकमील थी। उसका रूहेला हुकूमत से कोई ताल्लुक़ न था। अमीर ख़ुद न तो हुकूमत व सिपाह से मुताल्लिक़ थे और न उनको शाही दरबार लगाने का इख़्तियार था। उनके अपने निजी मुलाज़िम और निजी महफ़िलें थीं, लेकिन ये मेहफ़िलें शाहाना अन्दाज़ रखती थीं।"

टाँडा इनकी जागीर में था जहाँ उनका निजी दरबार लगता था। उस वक़्त टाँडा मुरादाबाद में शामिल था, यही वजह है उस दौर के सारे तज़्किरों में 'अमीर' को मुरादाबादी लिखा गया है।

'अमीर' को चित्रकला से इतना लगाव था कि उस दौर के मशहूर शायरों और दूसरी चीज़ों की तस्वीरों का एलबम भी तैयार कराया था, और आक़िल ख़ाँ नाम के एक व्यक्ति को इसी काम के लिये मुलाज़िम रखा था। संगीत में, ख़ासतौर पर सितार वादन में दिलचस्पी का यह हाल था कि उन्हें उस दौर के अच्छे संगीतज्ञों में गिना जाता था।

हकीम कबीर सम्भली के कहने पर 'अमीर' ने शायरी के मैदान में क़दम रखा और उस दौर के मशहूर शायर क़ायम चाँदपुरी को अपने दरबार (1771ई.) में बुलाकर सौ रुपये महीने पर मुलाज़िम रखा और उनके शागिर्द हुए। 'क़ायम' ने अमीर की तारीफ़ में क़सीदे, क़तआत और रुबाइयाँ भी कही हैं जो 'कुल्लियाते क़ायम' में शामिल हैं।

'अमीर' एक तरफ़ जहाँ खुद शायरी व दूसरी ललित कलाओं में दिलचस्पी रखते थे, वहीं दूसरे शायरों व कलाकारों को भी बड़ा मान-सम्मान

देते, इनाम और वज़ीफ़े देकर हौसला अफ़ज़ाई करते और उन्हें अपने दरबार में रखते थे। यही वजह है कि उस दौर के बड़े-बड़े शायर जैसे नईम, फ़िदवी लाहौरी, मुस्हफ़ी अमरोहवी, परवाना मुरादाबादी, इशरत हज़ाल, मुराद अली हैरत मुरादाबादी, इश्क़ी मुरादाबादी वग़ैरह 'अमीर' से जुड़े रहे। उर्दू के मशहूर लेखक डा. अबुल-लैस-सिद्दीक़ी ने लिखा है कि:

"टाँडे का दरबार अगरचे मुख़्तसर था, लेकिन दिलचस्पी में पुराने शाहाना दरबारों की यादगार था। इसके मीरे-मजलिस नवाब मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' थे।"

'अमीर' का इन्तक़ाल बहुत कम आयु में सिर्फ़ 39 साल की उम्र में 3 जनवरी 1775 ई. को रामपूर में हुआ। इनकी औलाद में एक बेटा अहमद यार ख़ाँ 'अफ़सर' और दो बेटियाँ थीं।

'अमीर' का एक शेर बहुत मशहूर हुआ जो आज भी लोगों की ज़बान पर आ जाता है:

शिकस्तो-फ़त्ह मियाँ इत्तेफ़ाक़ है लेकिन
मुक़ाबला तो दिले नातवाँ ने ख़ूब किया

इसके अलावा मुख़्तलिफ़ तज़्किरों से उनके जो शेर मिले वे यहाँ पेश किये जा रहे हैं:

तेरे घर जाने से, याँ अपना तो घर जाता है
ऐ मिरी जान के दुश्मन तू किधर जाता है
हाये रे! सुर्ख़ी तिरे चेहरे की, हंगामे-इताब
जिस क़दर बिगड़े है, उतना ही सँवर जाता है

+ + +

बची आँख और तिरे घर को चले हम
ख़ुदा देवे न कुछ बन्दे को चसका

+ + +

कुछ मर्ग में और ज़ीस्त में इतना तो नहीं फ़र्क़
दोनों में तफ़ावुत है तनक ज़ेरो-ज़बर का

+ + +

एक दिन हो तो हाले-दिल मैं कहूँ
तुझ सती दुख मुदाम क्या कहिये

+ + +

छले है मुझसे इक पीरे-कुहन को
तनक देखो तो तर्ज़ उस नौजवाँ के

+ + +

मत खोल के बाल ख़ल्क़ को मार
ऐ ज़ुल्फ़ों पे तिरी बल गये हम

+ + +

किन हसरतों से छोड़के हम ये जहाँ चले
आये तो हद सुबुक थे प कितने गिराँ चले

+ + +

कल थी मजनूँ की आज याँ तेरे
इश्क़ की हों हैं घर-बघर बातें
जी में आता है ज़ुल्फ़-ओ-रुख़ की तिरे
शाम से कीजे ता सहर बातें

+ + +

किसके खुले हैं ज़ुल्फ़ की दरिया में आज बाल
जाती है मौज ऐंडती सौ पेचो-ख़म के साथ

+ + +

मैं अर्ज़ की कि क़त्ल है मेरा निपट सवाब
बोला कि कौन मार के तुझको अज़ाब ले

+ + +

किस ज़ीस्त पे मानिन्दे हबाब इतनी हवस आज
होना है हवा कल को जो है तन में नफ़स आज

+ + +

अपनी हस्ती पे हैं मौकूफ़ जहाँ के झगड़े
मिट गये आप ही जिस वक़्त तो फिर नाम कहाँ

+ + +

माहियते क़ल्ब ख़ूब समझे
पर आपसे बेख़बर गये हम
पाया तो उरूज आसमान तक
पर सूरते मिह्र ढल गये हम

+ + +

इक रह गये हैं मजलिसे-रौशन दिलाँ से हम
जूँ शम्अ क्यों न काँपें हवा-ए-जहाँ से हम

+ + +

जाहे-दुनिया पे ऐतिमाद ही क्या
मिह्र बादे उरूज ढलता है

+ + +

ताब क्या आइने की होवे मुक़ाबिल तेरे
सामने होके तुझे शम्सो-क़मर देखें तो

+ + +

नूह के तूफ़ान की शिद्दत को आलम भूल जाय
लहर पे अपनी तनक ऐ चश्मे-तर आ जाओ तो

+ + +

देख उस शोला रू को मुँह अपना
शम्अ फ़ानूस में छिपाती है

+ + +

मुँह तिरा शब को दुपट्टे से जो बाहर होवे
किस तरह चाँद भला उससे बराबर होवे

+ + +

दिन को जो मिह्र देखे तो सदक़े हो तुझ उपर
शब को बलायें मुँह की तिरे माहताब ले

+ + +

देखी जो मैं सर-नविश्त अपनी
जुज़ रोज़े सियाह कुछ न निकला
क्या तूने दिया था मुझको साक़ी
शीशे में तो वाह कुछ न निकला

+ + +

सुर्ख़ चश्म इतनी कहीं होती है बेदारी से
लहू उतरा है तिरी आँखों में ख़ूँख़्वारी से
वक़्त रुख़सत के तिरे ऐ मिरे जी के दुश्मन
थाम-थाम आज रखा दिल को मैं किस ख़्वारी से
बस में आया जो तुम्हारे उसे चाहो सो करो
क्या सितम आदमी सहता नहीं लाचारी से
किसने नज़रों से ख़ुदा जाने उसे मल डाला
नर्गिस आज आँख उठाती नहीं बीमारी से
क्या कहूँ वलवला-ए-शौक़ को तेरे मैं 'अमीर'
घर में जाते हैं पराये तो ख़ाबरदारी से

+ + +

थरथराता है अब तलक ख़ुर्शीद
सामने तेरे आ गया होगा

+ + +

बैठे बिठाये कूचा-ए-क़ातिल में ले गया
या रब बुरा हो इस दिले-ख़ानाख़राब का

+ + +

गर वक़्ते ज़िब्ह नाला किया मैंने क्या हुआ
प्यारे किसी का हाथ किसी की ज़बाँ चले

+ + +

अमीर का कलाम देखने से स्पष्ट होता है कि :

(1) 'अमीर' की ज़बान दिल्ली की ज़बान के ज़्यादा क़रीब है।

(2) 'अमीर' के कलाम में उस दौर के बहुत से अल्फ़ाज़ नज़र आते है,

जैसे: तनक, निपट, सती, टालबाल, बलजाना, उपर, आदि
(3) 'अमीर' के वहाँ तसव्वुफ़ (सूफ़ीज़्म) के मज़मून ज़्यादा पाये जाते हैं, और उनमें भी ख़ासतौर पर दुनिया की नापायेदारी (अस्थयीपन) की तकरार बार-बार होती है।
(4) 'अमीर' ने शायरी की दूसरी ख़ूबियों जैसे सनाये-बदाये (शब्दालंकार, अर्थालंकार, उपमा, रूपक आदि) का इस्तेमाल भी ख़ूब किया है।

परवाना अली शाह 'परवाना'

परवाना अली शाह 'परवाना' मुरादाबाद के रहने वाले थे। पहले मीर मुराद अली 'हैरत' के शागिर्द हुए फिर क़ायम चाँदपुरी के शागिर्द हो गये थे। और उन्हीं के ज़रिये इन्हें नवाब मोहम्मद यार ख़ाँ 'अमीर' के दरबार में नौकरी भी मिल गई थी, जो ज़्यादा दिन तक नहीं रही। दुनियादारी (सांसारिक जीवन) से दूर घुमक्कड़पन में जिन्दगी गुज़ारते थे। कहते हैं कि क़लंदर फ़क़ीर थे और हर वक़्त खुदा की याद में, उसके नाम की माला जपते फिरते थे। यह भी कहा जाता है कि वह दिलों का भेद जानते थे। कुछ लोगों का कहना है कि दीवाने हो गये थे और गली, मुहल्लों और बाज़ारों में स्वाँग बनाकर अपना कलाम ऊँची आवाज़ से पढ़ते फिरते थे।

कलाम का नमूना

आज साबुत न रहे दिल न कोई जान दुरुस्त
उसके मिशगाँ ने किये फिर परो-पैकान दुरुस्त
हिम्मते-हज़रते-क़ायम से अगर हो इमदाद
चंद अय्याम में कर लीजिये दीवान दुरुस्त

\+ + +

उल्फ़त जो की है तुमने मियाँ उसका साथ दो
या दिल जो ले गये हो मिरा, मेरे हाथ दो

\+ + +

अपना तो दिल ज़माने से अब इतना तंग है
जो दम है ज़िन्दगी का सो शीशे पे संग है

+ + +

खा तेग़े-निगह जब तिरे आशिक़ को ग़श आया
गोया कि दमे निज़ा में बिस्मिल को ग़श आया

+ + +

क्यों कर पैग़ाम मुझे उसका ज़बानी आवे
नाम सुनते ही मिरा जिसको गिरानी आवे
झूठ कहता है तू क़ासिद ये ज़बानी पैग़ाम
मुझको बावर नहीं जब तक न निशानी आवे

+ + +

हिदायत अली 'तम्कीन'

हिदायत अली 'तम्कीन' कुन्दरकी के रहने वाले, अरबी, फ़ारसी और उर्दू के बड़े आलिम थे। मुरादाबाद में मुंसिफ़ (जज) थे। रिटायरमेंट के बाद अपने वतन कुंदरकी में रहते थे और अपना वक़्त पढ़ने पढ़ाने में गुज़ारते थे। सर रज़ा अली ने लिखा है कि उन्होंने तम्कीन की फ़ारसी शायरी का एक बड़ा दीवान और फ़ारसी के बड़े बड़े शायरों की शायरी का क्लैक्शन 'हिदायत-उश-शोअरा' के नाम से चार जिल्दों में उनके हाथ का लिखा हुआ देखा था। जिनमें से एक जिल्द 640 पन्नों की थी।

उर्दू शायरी में भी तम्कीन का दर्जा कम नहीं था। कुदरत-उल्लाह शौक़ ने 1774 ई. अपने तज़्किरे में इनका ज़िक्र किया है और इनकी उर्दू शायरी के नमूने दिये हैं, दूसरी तरफ़ मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपने एक ख़त में तम्कीन का ज़िक्र किया है। इससे यह मालूम होता है कि तम्कीन ने लम्बी उम्र पायी। लाला श्रीराम के तज़्किरे 'खुमख़ाना-ए-जावेद' और ख़्वेशगी के तज़्किरे ''गुलशने हमेशा बहार'' से तम्कीन का चुनिंदा कलाम पेश किया जा रहा है:

फिर शोरिशे जुनूँ है भला चाक क्या करूँ
दामाँ है दूसरा न गरीबाँ है दूसरा
इस अर्सा-ए-जहाँ में तिरे हाथ से मियाँ
ख़ंदाँ अगर है एक तो गिरयाँ है दूसरा

+ + +

लिया नहीं है गर उस परी ने बता तो 'तम्कीं' किधर गया है
वह सब्र मेरा, शकेब मेरा, क़रार और इख़्तियार मेरा

+ + +

बेवफ़ा से न मिलें, हिज्र में रो-रो मर जायँ
मशरबे इश्क़ में कुछ हम भी तो ऐसा कर जायँ

+ + +

अब न वो बुलबुल है ने गुलज़ार, क्या था क्या हुआ
कुछ नहीं आता नज़र जुज़ ख़ार, क्या था क्या हुआ
न वो साक़ी है, न मीना है, न साग़र है, न गुल
ने बग़ल में यारे गुल-रुख़सार, क्या था क्या हुआ

+ + +

बेदाद-ओ, जफ़ा-ओ, सितम-ओ, जोर-ओ, अदावत
कीजेगा कहाँ तक भला देखें तो हम अच्छा

+ + +

आज तो कुछ सलाम भी लेते नहीं हो, ख़ैर है
जाते हो इस तरह चले जैसे कि आशना नहीं

+ + +

तम्कीं ग़ज़ल यह कहना तिरा ऐसी तर्ज़ से
ज़ाहिर है ये कि ख़ूबी-ए-ज़हने-रसा है ये

+ + +

दीनो-दिलो-शकेब गये इक निगाह में
हमसे सुलूक वाह ये क्या यार कर चले

+ + +

जबसे सूरत तिरी, आँखों में मिरी रहती है
सारे आलम से मुझे बे-ख़बरी रहती है
किस तरह भूले न तम्कीं भला दीनो-दुनिया
उसको हर वक़्त मियाँ याद तिरी रहती है

+ + +

निक़ाब उठाओ, न रू दिखाओ, न हाल पूछो, न पास आओ
तुम्हारे हाथों से इन दिनों तो बिचारा 'तम्कीं' अज़ाब में है

+ + +

मोहम्मद बुलाक़ी 'ख़ाकसार'

मोहम्मद बुलाक़ी मुरादाबाद के रहने वाले सिपाही थे। मिज़ाज आशिक़ाना था। फ़ारसी में शायरी करते थे। क़ुदरत-उल्लाह 'शौक़' के क़रीबी दोस्त थे और उन्हीं के कहने पर उर्दू में शायरी शुरू की। 'शौक़' से अपनी निकटता का ज़िक्र उन्होंने अपने एक शेर में भी किया है, जो आगे लिखा जा रहा है। जवानी में इन्तेक़ाल हुआ। उनके चन्द शेर नीचे लिखे जा रहे हैं:

मिरे दीदा-ए-तर बहाकर चले
दो आबे में ये घर डुबाकर चले
किया तेग़े अबरू से मुझको शहीद
ये क्या ख़ूब जौहर दिखाकर चले
दिखा साक़े-सीमीं तो अब शम्अ को
रुलाकर, गलाकर, जलाकर चले
दिलो-जान से हज़रते 'शौक़' को
इमाम अपना और पेशवा कर चले

+ + +

अहमद उद्दीन ख़ाँ 'इबरत'

नवाब अहमद-उद्-दीन ख़ाँ के पिता का नाम कुतब-उद्-दीन ख़ाँ था। यह नवाब अज़मत-उल्लाह ख़ाँ के पोते थे। बहादुरी में अपने पिता की तरह मशहूर थे। बड़े क़ाबिल और शरीफ़ इंसान थे। शायरी का अच्छा शौक़ था और ज़ौक़ी राम 'हसरत' के शागिर्द थे। इन्होंने अपना दीवान भी तैयार किया था। प्रस्तुत हैं कुछ शेर :

फ़क़त दिल ही न दिलबर का मकाँ है
जहाँ देखो वो हरजाई वहाँ है

+ + +

बाइसे-ख़्वारी तिरी यारी हुई
वरना क्या हमसे गुनहगारी हुई
इश्क़ का ग़म दिल से जाता ही नहीं
कौन सी साअत ये बीमारी हुई

+ + +

मुहब्बत यार की जी में बसी है
जफ़ा कहने में नासेह बेबसी है
हमें क्या काम आईने से लेकिन
मुझे मिलने में उसके आर सी है

+ + +

गो हमको तिरे बिन कहीं आराम न होवे
पर पास यही है कि तू बदनाम न होवे
चाहूँ हूँ बुला लावे कोई उसको मिरे पास
इस तौर से लेकिन कि मिरा नाम न होवे
कह दो कि न जा बज़्म में अग़यार की ज़िनहार
पर मेरी तरफ़ से उसे पैग़ाम न होवे

+ + +

दर्द के इज़हार से चुप न रहा चाहिये
वो न सुने या सुने कुछ तो कहा चाहिये

+ + +

क्या हुआ दिल ने अगर दर्द को पाया मेरे
लेक कुछ काम वो बेदर्द न आया मेरे

+ + +

न मुझको आह की ताक़त न उसकी मेह्रबानी है
कटे हैं इस तरह दिन ये भी कोई ज़िन्दगानी है
तसल्ली किस तरह से हिज्र में हो उस जफ़ाकश के
न नामा है, न क़ासिद है, न पैग़ामे-ज़बानी है

+ + +

बला है, फ़ितना है, आफ़त है या यह तेरा क़ामत है
कि जिसके हाथ से सर्वे-गुलिस्ताँ पर क़यामत है
खुदा हर्गिज़ न दिखलावे किसी आज़ुर्दा ख़ातिर को
शबे-हिज्राँ जिसे कहते हैं वो रोज़े क़यामत है

+ + +

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के बीच की कड़ी

अब दो ऐसे शायरों का ज़िक्र करते हैं जो अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के बीच की कड़ी हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी ज़िन्दगी का आधा हिस्सा अट्ठारहवीं सदी और आधा हिस्सा उन्नीसवीं सदी में बिताया।

मीर अली अकबर रिज़वी 'अज़मत'

मीर अली अकबर रिज़वी 'अज़मत' की उम्र मुस्हफ़ी ने 'रियाज़- उल-फ़ुसहा' में 60 बरस लिखी है, इस हिसाब से इनकी पैदाइश 1745 ई. के लगभग मुरादाबाद में हुई। इन्होंने लखनऊ जाकर जाफ़र अली 'हसरत' की शागिर्दी की और उम्र का बड़ा हिस्सा वहीं गुज़ारा। मुस्हफ़ी ने अपने तज़्किरे में उनका ये कलाम लिखा है:

उसने आलम जुदा निकाला है
एक आलम को मार डाला है

+ + +

पूछो मत मेरा हाल क्या कुछ है
दिल निपट बेक़रार-सा कुछ है
तू जो करता है बेमज़ा मुझको
इसमें भी यार क्या मज़ा कुछ है
हिज्र में क्या जियेंगे ऐ अज़मत!
बाक़ी अब हम में क्या रहा कुछ है

+ + +

उसे फिर देख लूँ यकबार मरना तो मुसल्लम है
अजल ये आरज़ू बर आये जब तक, तन में दम रखना
क़दम बोसी की तेरी आरज़ू में जी जला बारे
कभी तुर्बत पे तो आकर मिरी ज़ालिम क़दम रखना

जवाबे-ख़त लिखा हर इक को उसने अपने हाथों से
मिरे ख़त के ही पढ़ते हाथ से क्या था क़लम रखना
नसीबों से तिरे आवे जो 'अज़मत' वो कभू घर में
न-जाने दीजियो हर्गिज़ उसे, देकर क़सम रखना

+ + +

तस्वीर तेरी आँखों की अपने हुज़ूर है
नज़दीक है तू दिल से मिरे, गोकि दूर है

+ + +

जाके कल बैठे जो उस दर पे सरेशाम से हम
ता दमे-सुब्ह न वाक़िफ़ हुए आराम से हम

+ + +

मार डाला ग़म में तेरे आहो-ज़ारी ने मुझे
सख़्त घबराया है, दिल की बेक़रारी ने मुझे
कुछ मैं कह सकता नहीं उसको, दिला! अब क्या कहूँ
खो दिया है आह! उसकी पासदारी ने मुझे

+ + +

करीम-उद्दीन 'सनअत'

करीम-उद्दीन नाम और तख़ल्लुस 'सनअत', पिता का नाम शैख़ नत्थु था। मुरादाबाद के मुहल्ला मण्डी बाँस के नज़दीक रहते थे। मुस्हफ़ी ने 1806 ई. में इनकी उम्र 45 साल लिखी है, इस हिसाब से इनकी पैदाइश 1760 ई. में हुई होगी, जबकि इनका इन्तक़ाल 3 मुहर्रम 1265 हिजरी (28 नवम्बर 1848 ई.) को हुआ। यह पेशे से हस्तशिल्पी थे और सुनार का काम करते थे। शायरी में कुदरत-उल्लाह 'शौक़' के शागिर्द थे। 1877 ई. में इनका कुल्लियात नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से छप चुका है। 'सनअत' को अपने दौर का उस्ताद शायर माना जाता था और मुशायरों में इनकी शिरकत कामयाबी की ज़मानत समझी जाती थी। तज़्मीन निगारी (किसी शायर के कलाम पर मिसरे या बन्द

लगाना), खासतौर पर मुख़म्मस (पांच मिसरों का बन्द) में उस्ताद समझे जाते थे। इनकी तज़्मीनों का मजमुआ (संग्रह) भी छपा था।

अपने कारोबार और शायरी से हटकर जो वक़्त मिलता, उसे इबादत में लगाते थे। रूहानी मामलात में भी इनकी पहुँच यहाँ तक थी कि दो दिन पहले तस्लीम सहस्वानी से अपने इन्तक़ाल का तारीख़ी क़तआ लिखवा लिया था, यानी दो दिन पहले मरने की तारीख़ लिखवा ली थी।

कलाम का नमूना

न मोनिस, न हमदम न हम यार ठहरे
फ़क़त ग़म ही खाने के ग़मख्वार ठहरे
यह माना कि हैं आप दिलबर व-लेकिन
हमारा ही दिल लेके दिलदार ठहरे

+ + +

मुझको बुलाया ग़ैर के घर जाकर आपने
इसको सितम कहूँ कि मदारात! क्या कहूँ

+ + +

तूही बतला दे यार 'सनअत' को
क्यों भला तुझपे प्यार आता है

+ + +

दैरो-काबे में है जल्वा उसी हरजाई का
तू न देखे तो ये नुक़सान है बीनाई का

+ + +

जान तो ली है पर अभी तुमको
दिल के लेने का ढब नहीं आता

+ + +

कल उस तरफ़ वो ऐसी फबन से निकल गया
देखे से उसको जी मिरा सन से निकल गया

+ + +

हम अश्क से दिन-रात झड़ी क्यों न लगायें
तुम काटो जो बरसात के अय्याम कहीं और

+ + +

मैं तुझे चाहा किया, तू ग़ैर को चाहा किया
हाय ज़ालिम! उम्र भर तूने जो चाहा किया

+ + +

हाले-दिल उससे मैं कहता हूँ अगर रो-रोकर
तो वो कहता है बदनाम न कर रो-रोकर

+ + +

बेक़रारी को हमारी किस तरह आये क़रार
सैंकड़ों इनकार हों जब आपके इक़रार में

+ + +

क़िस्मत है बुरी अपनी, इल्ज़ाम दें हम किसको
अपना तो नहीं कोई इस दिल के सिवा दुश्मन

+ + +

फ़ुर्क़त की रात है कि क़यामत का रोज़ है
या रब ये कैसी शब है कि जिसकी सहर नहीं

+ + +

दीनो-दुनिया में कोई अपना ठिकाना ही नहीं
हज़रते इश्क़ अगर आपकी सरकार न हो

+ + +

जान भी उसपे गर फ़िदा कीजे
जब भी अपना न हो तो क्या कीजे

+ + +

आँखों को भी वह तलवों से मलने नहीं देते
अरमान मिरे दिल के निकलने नहीं देते

+ + +

क़त्ल नाहक़ किया तूने जिसे तलवार घसीट
लाश को उसकी न ज़ालिम सरे-बाज़ार घसीट

+ + +

'सनअत' की शायरी हालाँकि पारम्परिक शायरी है, बस अन्दाज़ अलग है। लेकिन उनकी ख़ास बात यह है कि उन्होंने दिल्ली से हटकर लखनवी रंग को प्राथमिकता दी, दूसरे यह कि उन्होंने वले, ढब और घसीट जैसे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करके ज़बान की प्राकृतिक सादगी को बनाये रखने का कोशिश की। उनके कलाम में मुहावरों का प्रयोग, रिआयते लफ़्ज़ी (शब्दालंकार) और दूसरी सअनतों (अलंकारों) का इस्तेमाल बहुत अच्छे तरीक़े से मिलता है।

उन्नीसवीं सदी में मुरादाबाद में ग़ज़ल

उन्नीसवीं सदी मुरादाबाद में साहित्यिक लिहाज़ से बड़ी अहम रही। इस सदी के शुरू में हमें एक तरफ़ मुस्हफ़ी अमरोहवी, क़ुदरत-उल्लाह 'शौक़', मुराद अली 'हैरत', ज़ौक़ी राम 'हसरत' वग़ैरह के शागिर्द साहित्य सृजन करते नज़र आते हैं, तो वहीं दूसरी तरफ़ ज़की मुरादाबादी जैसा शायर नज़र आता है, जो स्वयं में शायरी के एक स्कूल की हैसियत रखता है। 'ज़की' और उनके शागिर्द यहाँ इस तरह छाये रहे कि यह सिलसिला आज तक जारी है। तीसरे यह कि मुरादाबाद में 'ग़ालिब' का आगमन हुआ और यहाँ उनके कुछ शागिर्द भी नज़र आते है। चौथे यह कि सदी के आख़िर में 'दाग़ देहलवी' कई बार यहाँ आये। उनके भी कई शागिर्द यहाँ प्रभावी शक्ल में नज़र आते है।

इस सदी में यहाँ शेर-शायरी बड़े उरूज पर थी और सैकड़ों शायर मौजूद थे, उन सबका विवरण प्रस्तुत करना इस छोटी पुस्तक में सम्भव नहीं, केवल उनकी सूची दी जा रही है:

जलाल-उद-दीन ख़ाँ 'रग़बत'	मृ. 1840 ई.
अली मोहम्मद ख़ाँ 'जूदत'	मृ. 1848 ई.
अली मोहम्मद ख़ाँ 'अली'	मृ. 1848 ई.
अब्दुल क़ादिर ख़ाँ 'ग़म्ग़ीन'	मृ. 1849 ई.
तुराब अली शाह 'तुराब'	मृ. 1850 ई.
अली-उद-दीन ख़ाँ 'अली'	मृ. 1857 ई.
शब्बर अली ख़ाँ 'आजिज़'	मृ. 1857 ई.
रफ़ी अली ख़ाँ 'अली'	मृ. 1858 ई.
इमाम-उद-दीन 'हादी'	मृ. 1858 ई.
क़ुतब-उद-दीन 'इश्क़ी'	मृ. 1870 ई.
मीर हुसैन अली 'हुसैन'	मृ. 1872 ई.
मोहम्मद सादुल्लाह 'आशुफ़्ता'	मृ. 1877 ई.
क़ासिम अली 'ज़का'	मृ. 1878 ई.

अय्यूब ख़ाँ 'कैफ़ी'	मृ. 1890 ई.
हशमत अली ख़ाँ 'मफ़्तूँ'	मृ. 1890 ई.
अनवार हुसैन 'तस्लीम'	मृ. 1892 ई.
शहाब-उद-दीन 'साक़िब'	मृ. 1899 ई.
अमजद अली 'नय्यर'	मृ. 1901 ई.
सय्यद अब्दुर्रशीद 'रशीद'	मृ. 1904 ई.
नवाब मोहम्मद मियाँ 'हरमाँ'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
नवाब अली मोहम्मद ख़ाँ 'ख़ंदाँ'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
ज़ौक़ी राम 'ज़ौक़ी'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
मीर ग़ुलाम रसूल 'सय्यद'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
राधा कृष्ण 'शुक्र'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
बख़्तावर सिंह 'ग़ाफ़िल'	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
'ग़ुरबत' मुरादाबादी	1835 ई. में ज़िन्दा थे।
फ़ारिग़ अली 'फ़ारिग़'	1838 ई. में ज़िन्दा थे।
'हबीब' मुरादाबादी	1845 ई. में ज़िन्दा थे।
सय्यद बरकत अली 'नहीफ़'	1845 ई. में ज़िन्दा थे।
मो. मोअज़्ज़म अली 'मोअज़्ज़म'	1853 ई. में ज़िन्दा थे।
मीर ग़ुलाम अली 'मुंशी'	1854 ई. में ज़िन्दा थे।
हिदायत अली 'हिदायत'	1854 ई. में ज़िन्दा थे।
अमीन-उद-दीन 'रासिख़'	1857 ई. में ज़िन्दा थे।
राय प्रद्युम्न किशनकुमार 'हादी'	1857 ई. में ज़िन्दा थे।
नारायण सिंह 'शम्स'	1860 ई. में ज़िन्दा थे।
सय्यद नक़ी अली 'ग़ुबार'	1864 ई. में ज़िन्दा थे।
मो. नियाज़ अली 'नियाज़'	1864 ई. में ज़िन्दा थे।
मो. इस्हाक़ हैरत'	1870 ई. में ज़िन्दा थे।
लाला श्रीवास्तव 'रहीफ़'	1874 ई. में पदासीन थे।
फ़िदा अली 'फ़ारिग़'	1877 ई. में ज़िन्दा थे।
मो. नूरुल्लाह 'नूर'	1877 ई. में बुज़ुर्ग थे।

शिफ़ाअत उल्लाह 'शिफ़ाअत'	1879 ई.में फ़साना ए अजाईब लिखा।
पं. दत्तराम 'दत्त'	1880 ई. में 61 वर्ष के थे।
पं. कामताप्रसाद 'मसरूर'	1882 ई. डी.एम. थे।
राय कुँवर किशन कुमार 'वक़ार'	1882 ई. में ताजपोशी हुई।
मंजूर अहमद 'मुज़्तर'	1885 ई. में गज़ल छपी।
मिर्ज़ा अहमद हुसैन 'तस्ख़ीर'	1888 ई. में अख़्बार निकाला।
बृजलाल भटनागर 'आसी'	1888 ई. में दीवान छपा।
पीतम लाल 'शुक्र'	1890 ई. में मदीहं वक़ार छापी।
मो. अशफ़ाक़ अली 'मुज़्तर'	1892 ई. में कातिब थे।
बनवारी लाल 'मिश्र'	1895 ई. में अख़्बार निकाला।
मो. मुजीबुल्लाह 'हाफ़िज़'	1898 ई. में दीवान छपा।
ठाकुर राधाकृष्ण 'मुशताक़'	
चौबे बद्रीदास 'फ़र्रूख़'	
लाला जयसुखलाल 'मक़बूल'	
मक़बूल अहमद 'मक़बूल'	

बीसवीं सदी के शुरू में मौजूद शायर

मो. अहमद बख़्श 'अहमद'	1906 ई. में कलाम छपा।
सय्यद गुलाम शब्बीर 'रज़ी'	1911 ई. बूढ़े थे।
सय्यद मोहम्मद साइम 'हबाब'	1912 ई. 70 वर्ष के थे।
लाला इन्द्रमन महाजन 'इन्द्रमन'	मृ. 1920 ई.
क़ाज़ी स. मासूम अली 'रंजूर'	मृ. 1909 ई.
जाफ़र हुसैन 'तरीक़'	मृ. 1910 ई.
मौलवी मोहम्मद गुल ख़ाँ	मृ. 1912 ई.
नजफ़ अली 'ख़्वाहाँ'	मृ. 1914 ई.
फ़रीद अहमद 'वफ़ा'	मृ. 1914 ई.
अहमद हसन 'शबाब'	मृ. 1917 ई.
सय्यद मोहम्मद अली 'जोया'	मृ. 1921 ई.
मुईनुद्दीन 'नुज़हत'	मृ. 1921 ई.

मिर्ज़ा अली रज़ा 'महज़ूँ'	मृ. 1926 ई.
तक़ी उद्दीन 'मफ़्तूँ'	मृ. 1926 ई.
क़ाज़ी मो. इम्दाद हुसैन 'इम्दाद'	मृ. 1928 ई.
मो. इस्माईल 'बर्बाद'	मृ. 1929 ई.
हकीम सद्दीक़ हसन 'क़ास्मी'	मृ. 1929 ई.
छब्बी लाल 'असर'	मृ. 1935 ई.
मिर्ज़ा अहमद शाह बेग 'जौहर'	मृ. 1935 ई.
क़ाज़ी शौकत हुसेन 'शौकत'	मृ. 1935 ई.
मिर्ज़ा मो. रज़ा बेग 'शोर'	मृ. 1935 ई.
एस. इब्ने अली 'नय्यर'	मृ. 1936 ई.
इम्दाद हुसैन 'अख़गर'	मृ. 1942 ई.
क़ाज़ी अब्दुल अली 'आबिद'	मृ. 1943 ई.
क़ाज़ी मो. जलालुद्दीन 'जलाल'	मृ. 1948 ई.
अली हुसैन 'सहबा'	मृ. 1950 ई.

उपरोक्त में से कुछ प्रमुख और प्रभावी शायरों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है:

मीर आरिफ़ अली 'आरिफ़'

मीर आरिफ़ अली का तख़ल्लुस 'आरिफ़' और पिता का नाम मीर गुलाम रसूल था, वह भी शायर थे और उनका तख़ल्लुस 'सय्यद' या 'सियादत' था। अमरोहा के रहने वाले थे, लेकिन बाद में मुरादाबाद में रहने लगे थे। मुंशी देवी प्रसाद 'ज़रीफ़' ने आरिफ़ को 'मुस्हफ़ी' का शागिर्द कराया था। इन्हें शायरी और उरूज़ व क़ाफ़िया (छंदशास्त्र) का अच्छा ज्ञान था। मुस्हफ़ी ने इनकी उम्र 'रियाज़-उल-फ़ुस्हा' में 35 वर्ष लिखी है, इस हिसाब से इनकी पैदाइश 1774-75 में हुई होगी। 1834-35 ई. में इन्होंने शायरी छोड़ कर तसव्वुफ़ (सूफ़ीज़्म) के मैदान में क़दम रखा और फ़िर आखिरी उम्र तक वाज़ और नसीहत

(धर्मोपदेश) में लगे रहे। 1842 ई. में मुरादाबाद में इन्तक़ाल हुआ। विभिन्न तज़्किरों में इनका जो कलाम प्राप्त हुआ, वो प्रस्तुत किया जा रहा है:

रात सारी मुझे दोनों की तसल्ली में कटी
हाथ दिल पर से उठाया तो जिगर पर रक्खा

+ + +

गुले रुख़्सार से फ़ूला है चमन आइने में
अक्स ने उसके किया जब से वतन आइने में
अब्रे सादा में नज़र आये है बिजली की सी कूँद
ये तिरी मौजे तबस्सुम की शिकन आइने में
चुपके-चुपके मैं खड़ा होता हूँ जाकर पीछे
देखे शायद वो मिरे ज़ख़्मे बदन आइने में

+ + +

वहीं पर आनकर तलवार बैठी
जहाँ चाके गरीबाँ पर रफ़ू था

+ + +

बाज़ू न बाँध कसके तड़पने दे टुक मुझे
सय्याद मुझको इसके सिवा कुछ हवस नहीं
बदले न क्योंकर करवटें ईधर उधर हज़ार
बिस्तर तिरे मरीज़ का जुज़ ख़ारो-ख़स नहीं
किस पर नज़र करें कि कोई शश जिहत में आह
बाला-ओ-ज़ेर, ईधर उधर, पेशो-पस नहीं

+ + +

जिनको हम दिल से आश्ना समझे
वो हमें आपसे जुदा समझे
मेरे जाते ही हो गया दर बन्द
बदनसीबी तुझे ख़ुदा समझे
कोई क्या जाने ख़ार की लज़्ज़त

इस मज़े को बरह्ना पा समझे
क्या दवा होगी दर्द की उसके
दर्दे-उल्फ़त को जो दवा समझे
कोई पूछे कि 'मीर आरिफ़' तुम
आपको अपने जी में क्या समझे

+ + +

आह! मैं किसका आस्ताँ भूला
यूँ जो इक दम में सब जहाँ भूला
बेख़बर याँ तलक कि याद नहीं
आपको मैं कहाँ-कहाँ भूला
यूँ मिटा डाला उसने तुर्बत को
फ़ातिहाख़्वाँ मेरा निशाँ भूला

+ + +

रफ़्तगी याँ भी आब की-सी है
वाँ जो आमद शबाब की-सी है
नक़्श बर आब है, न फूल इस पर
जिन्दगानी सराब की-सी है
तर्ज़े क़ासिद से हो गया मालूम
कुछ अलामत जवाब की-सी है
आतिशे ग़म से जल गया शायद
दिल में कूछ बू शराब की सी है
'मीर आरिफ़' की इन दिनों फिर कुछ
शक्ल ख़ाना ख़राब की सी है

+ + +

आरिफ़ उस्ताद शायर थे और उन्हें अपने फ़न पर पूरी पकड़ थी। वह मुश्किल ज़मीनों में शेर कहना पसंद करते थे। अरबी-फ़ारसी शब्दों का इस्तेमाल ज़्यादा करते थे। डा. फ़हमीदा ख़ान ने लिखा है कि इनकी शायरी दिल से ज़्यादा दिमाग़ की शायरी महसूस होती है।

मलिक-उश-शोअरा

महदी अली ख़ाँ 'ज़की' मुरादाबादी

मुरादाबाद के इतिहास में 'जिगर' से पहले अगर कोई शख़्सियत है, जिसने अपनी शायरी के ज़रिये पूरे हिन्दुस्तान में शोहरत हासिल की, तो वह महदी अली ख़ाँ 'ज़की' मुरादाबादी हैं। उस दौर में शुमाली हिन्द (उत्तरी भारत) में लिखा गया शायद ही कोई तज़्किरा ऐसा हो जिसमें 'ज़की' का ज़िक्र न मिले। यहाँ तक कि जुनूबी हिन्द (दक्षिणी भारत) में लिखे गये कुछ तज़्किरों में भी इनका ज़िक्र मिल जाता है।

महदी अली ख़ाँ 'ज़की' का जन्म 1793 ई. में मुरादाबाद में हुआ। शुरू में 'महदी' तख़ल्लुस था बाद में 'ज़की' रखा। किसी ने लिखा कि मुसहफ़ी के शागिर्द थे तो किसी ने 'नासिख़' का शागिर्द बताया है। 'हसरत' मोहानी ने इन्हें उन शायरों में शामिल किया है जिनका कोई उस्ताद नहीं था, लेकिन 'नासिख़' का समकालीन लिखा है, जोकि सही है। 'ज़की' ने एक शेर में ख़ुद भी इस तरफ़ इशारा किया है:

अब ये जी चाहता है, यारों को दिखलायें सुख़न
शायरी में नहीं अपना कोई उस्ताद हुनूज़

ज़की की प्रारम्भिक शिक्षा मुरादाबाद में हुई। इल्मे अरूज़ (छंद शास्त्र) करीम उद्दीन 'आरज़ू' मुरादाबादी से सीखा। उच्च शिक्षा लखनऊ में फ़िरंगी महल के आलिमों से प्राप्त की थी। घर का माहौल भी अदबी था, अत: 'ज़की' बचपन से ही शेर कहने लगे थे।

'ज़की' दिल्ली भी गये और वहाँ की महफ़िलों में शरीक हुए। कुछ समय के लिये सहारनपुर की तहसील में पेशकार भी रहे। उसी समय पंजाब भी गये। हैदराबाद गये, और वाली-ए-दकन आसिफ़ जाह पंचम की शान में क़सीदे कहे। ख़ूब सम्मानित किये गये और ढेर सारे इनाम मिले। कुछ समय बाद मुरादाबाद वापस आये। फिर लखनऊ चले गये और वाजिद अली शाह के दरबार में मुलाज़िम हो गये। वाजिद अली शाह

इनकी शायरी और क़ादिर-उल-कलामी (वाक्पटुता) से बहुत प्रभावित हुए और 'मलिक-उश-शोअरा' (राष्ट्रकवि) का ख़िताब (उपाधि) दिया। 1856 ई. में अंग्रेज़ों ने अवध की हुकूमत को ख़त्म किया और वाजिद अली शाह कलकत्ता में नज़रबन्द कर दिये गये तो ज़की फिर मुरादाबाद आ गये। यहाँ से नवाब रामपुर यूसुफ़ अली ख़ाँ ने अपने दरबार में बुलवा लिया। ज़की ने वहाँ रहकर कई दास्तानें (कहानियाँ) लिखीं, जिनकी पाण्डुलिपियाँ आज भी रज़ा लाइब्रेरी में मौजूद हैं। जब तक नवाब साहब ज़िन्दा रहे, 'ज़की' रामपुर में रहे। उनके बाद 'ज़की '1857 ई. में अपनी ज़ब्त हुई जायदादों को छुड़ाने के लिये अम्बाला गये, वहाँ इनके नौकर ने इन्हें ज़हर देकर मार दिया। इस तरह 75 साल की उम्र में 10 मार्च 1867 ई. को इनका इन्तक़ाल हुआ और वहीं दफ़्न हुए।

इनके द्वारा रचित निम्नलिखित किताबों का ज़िक्र मिलता है:

(1) कुल्लियाते ज़की
(2) रिसाला यादगीर (छंदशास्त्र)
(3) तिलिस्मे-जामे-जम
(4) तिलिस्म हैरत कदा-ए-आसिफ़ी
(5) तिलिस्म हकीम क़िस्तास
(6) तिलिस्म सबा सबाग़
(7) तिलिस्म बाला बाख़्तर

ये सभी किताबें रामपुर रज़ा लाइब्रेरी में मौजूद हैं। डा. जमील जालिबी ने लिखा है कि 'ज़की' के दीवान की पाण्डुलिपि (खुद ज़की के हाथ की लिखी हुई) पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर की लाइब्रेरी में रखी है।

जमील जालिबी के अनुसार : जिस वक़्त 'ज़की' ने शायरी शुरू की, उस वक़्त मुस्हफ़ी अमरोहवी को बड़ी क़द्र की निगाह से देखा जाता था। जबकि नई नस्ल में नासिख़ लखनवी की लोकप्रियता बढ़ रही थी। यहाँ तक कि दिल्ली में ग़ालिब, मोमिन और शेफ़्ता जैसे शायर भी उससे मुतास्सिर (प्रभावित) थे। अत: मुस्हफ़ी भी मुतास्सिर हुए बग़ैर नहीं रह सके। जब ज़की ने इस मैदान में क़दम रखा तो उन्होंने इन दोनों बड़े और मक़बूल (लोकप्रिय) शायरों (मुस्हफ़ी और नासिख़) के रंग को अपनी शायरी में समोने की कामयाब कोशिश की। इन दोनों रंगों के मिलने से 'ज़की' की शायरी में तीसरा रंग पैदा हुआ जो 'ज़की' की पहचान बना।

कलाम का नमूना :

वस्ल का लुत्फ़ कहाँ जबकि हुआ अपना विसाल
न रहे आपमें तो फिर ग़में-हिज्राँ किसका

+ + +

अब तक हुआ न दागे़-जिगर का जो गुल चराग़
ऐ आफ़्ताबे सुब्ह तेरा इन्तज़ार था

+ + +

नाला ज़ईफ़ दिल से कहाँ आये लब तलक
मंज़िल बड़ी है और मुसाफ़िर थका हुआ

+ + +

ले ही चुका वो जानो-दिलो-ताक़तो-तवाँ
क्यों आये अब यहाँ उसे क्या काम रह गया

+ + +

दिल सैर हो गया है ज़माने की सैर से
यह ताइरे ख़याल जहाँ से उठा, उठा

+ + +

अह्दे तिफ़्ली ही से था जो असरे-संगदिली
सीना उभरा बुते काफ़िर का तो पत्थर निकला

+ + +

अपना ग़म-ख़्वार नहीं अब तो जहाँ में कोई
तू भी हमसे न जुदा ऐ ग़मे-तनहाई हो

+ + +

जौहर तो मुझमें थे, मलाकूती सिफ़ात के
इंसाँ बनाके क्यों मिरी मिट्टी ख़राब की

+ + +

'ज़की' मुसाफ़िरे-मुल्के-फ़ना को है लाज़िम
कि बार दोश पे बाँधे तो मुख़्तसर बाँधे

+ + +

हर नफ़स क़ाफ़िला-ए-उम्र से देता है निशाँ
जुम्बिशे-नब्ज़ से आवाज़े-जरस आती है

+ + +

'ज़की' की मक़बूलियत (लोकप्रियता) की एक वजह यह भी है कि उन्होंने एक तरफ़ 1857 ई. में अपने खानदान पर फ़िरंगियों के ज़ुल्मो-सितम देखे, अपनी जायदाद ज़ब्त होने का ग़म झेला, तो दूसरी तरफ़ वाजिद अली शाह के दरबार को लुटते और उन्हें क़ैद होते हुए देखा था। लिहाज़ा उन्होंने गज़ल के मूलस्वरूप को ध्यान में रखते हुए पारंपरिक संकेतों, इशारों और रूपको के माध्यम से आपबीती को जगबीती बनाने की कोशिश की। जैसे:

हमारे हाल पे लाज़िम है रहम ओ सय्याद!
कि पर शिकस्ता हैं और शौक़ है रिहाई का

+ + +

क़ैद में हमको तड़पते हुए गुज़रीं उम्रें
और अब तक है वही ग़मज़ा-ए-सय्याद नया

+ + +

आतिश दबी हुई मिरे दिल की भड़क उठी
मुद्दत के बाद याद जो दाग़े-कुहन किया

+ + +

कभी होगा कि गुलिस्ताने-वतन देखेंगे
हम असीराने-क़फ़स फिर भी चमन देखेंगे

+ + +

बे-बालो-पर की ताक़ते-परवाज़ ताक़ है
सय्याद क्यों न क़ैदे-क़फ़स से रिहा करे

+ + +

इस तरह की और बहुत सी मिसालें 'ज़की' के कलाम में देखने को मिल जायेंगी। सवाल यह पैदा हो सकता है कि अपने दौर का इतना बड़ा और लोकप्रिय शायर जो सारे हिन्दुस्तान में जाना-पहचाना जाता हो,

उसकी शायरी अपने दौर से निकल कर हमारे दौर तक क्यों नहीं पहुँची? इसका जवाब देते हुए डा. जमील जालिबी ने लिखा है कि:

''आज यह कर्ब (1857 ई. के दुख और तकलीफ़) हमें शिद्दत के साथ इसलिये महसूस नहीं होता कि आज वह वाक़या सानिहा (घटना या दुर्घटना) जिसने उस दौर के फ़र्द (आदमी) को हिलाकर रख दिया था, हमारे जज़्बात का हिस्सा नहीं और उससे पैदा होने वाला कर्ब (तकलीफ़) हमारा कर्ब नहीं। यही वजह है कि उनके अशआर (शेर) अपने दौर (युग) से निकल कर हमारे दौर तक नहीं आते। ...'ज़की' मीर की तरह, इन अशआर की वाक़ियत (यथार्थता) को आफ़ाक़ियत (सर्वव्यापकता) की सतह (क्षितिज) पर लाने में कामयाब नहीं होते। यही वजह है कि वह अपने दौर के अहम (महत्वपूर्ण) शायर होते हुए भी दूसरी सफ़ (पंक्ति) में खड़े रह जाते हैं।''

लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 'ज़की' अपने दौर के अहम शायर है जिन्होंने 'नासिख़' की रिवायत को न सिर्फ़ आगे बढ़ाया और अपने दौर की तर्जुमानी (प्रतिनिधित्व) की, बल्कि अपनी शायरी का लोहा भी मनवाया।

यह भी एक हक़ीक़त है कि आज मुरादाबाद में शायरी का जो माहौल है, वह काफ़ी हद तक 'ज़की' की देन है। जिगर भले ही 'ज़की' की तरह फ़ित्री शायर थे, लेकिन थे वह उसी माहौल के पले-बढ़े, जो ज़की ने तैयार किया था। क़ैफ़ मुरादाबादी और क़मर मुरादाबादी जैसे शायर भी उसी माहौल की देन हैं, जिनके शागिर्द आज भी शहर में शेरो-शायरी की रिवायत को आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं। इन दोनों शायरों का सिल्सिला कहीं न कहीं ज़की से ही मिलता है।

मुरादाबाद में ज़की के निम्नलिखित शागिर्दों का उल्लेख मिलता है:

(1) मौलाना किफ़ायत अली 'काफ़ी' (मृ. 1858 ई.)
(2) क़ासिम अली 'ज़का' (मृ. 1878 ई.)

(3) शब्बीर अली खाँ 'तनहा' (मृ. 1886 ई.)
(4) कन्हैया लाल 'ज़ब्त' (मृ. 1890 ई.)
(5) मोहम्मद हुसैन 'तमन्ना' (मृ. 1900 ई.)
(6) ज़ौक़ी राम 'ज़ौक़ी' –
(7) फ़िदा अली 'फ़ारिग़' –
(8) देबीप्रसाद 'रब्त' –
(9) मोहम्मद मुजीबुल्लाह 'हाफ़िज़' –
(10) ग़ुलाम शब्बीर 'रज़ी' (मृ. 1911 ई.)
(11) क़ाज़ी ऐहतिशाम उद्दीन 'फ़रियाद' (मृ. 1917 ई.)
(12) मुईन-उद्दीन 'नुज़हत' (मृ. 1921 ई.)
(13) मुहम्मद हुसैन 'मक़तूल' –
(14) ब्रजबासीलाल भटनागर 'आसी'

उपरोक्त में से कुछ मशहूर शायर जिनसे मुरादाबाद में शेरो-शायरी का सिलसिला (शृंखला) क़ायम हुआ, उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:

मौलाना किफ़ायत अली 'काफ़ी'

1857 ई. की क्रांति में नवाब मज्जु ख़ाँ के साथ मिलकर अंग्रेज़ों के विरूद्ध मोर्चा सँभाला। जेलख़ाना तोड़कर बेगुनाह क़ैदियों को आज़ाद कराया। नवाब मज्जु ख़ाँ मुरादाबाद के हाकिम बने, तो 'काफ़ी' को मुरादाबाद का क़ाज़ी बनाया गया। जब अंग्रेज़ों ने मुरादाबाद पर दोबारा क़ब्ज़ा किया तो 30 अप्रैल 1858 ई0 (16 रम्ज़ान 1274 हि0) को कंजरी सराय में जानवरों के अस्पताल के सामने 'काफ़ी' को फाँसी दी गई, और वहीं उनकी लाश को दफ़्न कर दिया गया। उन्होंने अपनी नात पढ़ते हुए ख़ुशी-ख़ुशी फाँसी का फंदा चूम लिया और देश के लिये अपने प्राण न्योछावर कर दिये।

मौलाना 'काफ़ी' ने केवल हम्दिया (ईश-वंदना) और नातिया (पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद सल-लल्लाहो-अलैहि-वसल्लम की प्रशंसा) शायरी की। अतः उनकी ग़ज़लें भी उसी रंग में हैं। उन्हें अपने युग का बड़ा नातिया शायर माना जाता है, बल्कि उर्दू नातगोई का बादशाह कहा गया है।

शब्बीर अली ख़ाँ 'तनहा'

'तनहा' मुरादाबाद के मशहूर रईस (धनाढ्य) थे। इनके पिता का नाम निज़ामुद्दीन ख़ाँ था, मज्जु ख़ाँ के ख़ानदान से थे। 'तनहा' ने शहर के कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना में सहयोग दिया, इसके अलावा शहर में होने वाली साहित्यिक सरगर्मियों में भी शामिल रहते थे। 1857 ई. की जंग में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। बहादुर शाह ज़फ़र के साथ देहली में अंग्रज़ों के ख़िलाफ़ मोर्चा सँभाला।

इनका इन्तक़ाल 17 सितम्बर 1886 ई. को हुआ। जबकि अक्सर इतिहासकारों ने इन्हें शहीद लिखा है, जो कि सहीं नहीं है।

सही वाक़या यह है कि जब बहादुर शाह ज़फ़र का साथ देने के जुर्म में शब्बीर अली ख़ाँ को तलाश किया गया तो इनके बड़े भाई शब्बर अली ख़ाँ 'आजिज़' ने स्वयं को 'तनहा' बताकर खुदसुपुदर्गी (आत्मसमर्पण) कर दी और फाँसी के फंदे पर चढ़ गये। उन्होंने इतनी बड़ी कुर्बानी इसलिये दी, क्योंकि उनके कोई औलाद नहीं थी, जबकि 'तनहा' के कई बच्चे थे। अगर तनहा को फांसी होती तो उनके बच्चों के सामने बड़ा संकट खड़ा होजाता। यह वाक़या 'तनहा' के बेटे नवाब मुहियुद्दीन ख़ाँ ने लिखा है, जोकि भोपाल के क़ाज़ी थे।

लाला श्रीराम के तज़्किरे से 'तन्हा' के कुछ शेर प्रस्तुत हैं:

किसका है इन्तज़ार कि तारे तमाम रात
बेदार रहते हैं, दिले-बेदार की तरह

+ + +

आने को वो कहता तो है ज़ाहिर में वलेकिन
इक़रार के पर्दे में हैं इनकार हज़ारों

+ + +

इस अदा से तिरा बिस्मिल तड़पा
होके बेताब क़ज़ा लौट गई

+ + +

मैं सदक़े इस जफ़ा के, चश्मे-बद, दूर
वो दिल में बैठे हैं छुपकर नज़र से

+ + +

असर की आबरू, नालों ने खोई
बहुत गरजे, मगर कुछ भी न बरसे

+ + +

मुरादाबाद में 'तनहा' के निम्नलिखित शागिर्द मशहूर हुये:

(1) मिर्ज़ा अहमद हुसैन 'तस्ख़ीर'
(2) फ़रीद अहमद 'वफ़ा'
(3) इम्दाद हुसैन 'अख़गर'
(4) मोहम्मद हुसैन 'यकता'
(5) मुहियुद्दीन ख़ाँ 'मज़ाक़'

फ़रीद अहमद 'वफ़ा'

फ़रीद अहमद 'वफ़ा' के पिता का नाम सय्यद हशमत रज़ा था। मोहल्ला मुफ़्ती टोला के रहने वाले थे। चुंगी में मुलाज़िम थे। इनके ज़्यादा हालात मालूम नहीं हो सके। मालिकराम ने 'तज़्किरा-ए-माहोसाल' में लिखा है कि 'वफ़ा' का इन्तक़ाल 10 नवम्बर 1913 को बक़र ईद के दिन हुआ। इनका दीवान 'गुंचा-ए-नौबहार' के नाम से छपा था।

कलाम का नमूना:

क़त्ले-आलम का सबब पूछा किसी ने तो कहा
नाज़ था, ग़म्ज़ा था, शोख़ी थी, अदा थी, मैं न था
इस तरह बोले हटाकर वो मिरे मुँह से कफ़न
क्या अजल दर्दे जुदाई की दवा थी? मैं न था

+ + +

कहा वक़्ते-सहर उसने कि जाता हूँ, तो हसरत से
दिले-बेताब यूँ बोला, अभी रह जा, अभी रह जा

+ + +

बाल का लंगर है भारी, यार है नाजुक बदन
ज़ुल्फ़ बिखरी दोश पर, दर्दे-कमर होने लगा

+ + +

ख़ुदा को मान, तकब्बुर को छोड़ दे ऐ दिल!
वो औजे अर्श पे पहुँचा जो ख़ाकसार हुआ

+ + +

शाख़ पर मेवा को झुकते हुए देखा है 'वफ़ा'
जो ग़नी हैं वो झुका लेते हैं सर, आपसे आप

+ + +

नज़र जो नीची किये, सर झुकाये बैठे हैं
यही तो है जो मिरा दिल चुराये बैठे हैं
जो सर उठाते हैं नीचा ज़रूर देखते हैं
वो सरबलन्द हैं जो सर झुकाये बैठे हैं

+ + +

दिल में तुम्हीं, जिगर में तुम्हीं, जान में तुम्हीं
किस जा तुम्हारी याद नहीं, तुम कहाँ नहीं

+ + +

इस मुहब्बत पे पड़े ख़ाक कि ग़म में मेरे
ग़ैर मातम करें और वो कहें मर जाने दो

+ + +

वो मुँह के बल गिरे ग़ाफ़िल जो सर उठाके चले
बशर को चाहिये गर्दन ज़रा झुकाके चले

+ + +

मुरादाबद में 'वफ़ा' के निम्नलिखित शार्गिद मशहूर हुये:

क़ाज़ी बद्रजलाली, क़ाज़ी सौलत हुसैन, मिर्ज़ा ताहिर बेग, बैरिस्टर मसूद-उल-हसन, सूफ़ी तजम्मुल हुसैन, अल्लामा कैफ़ मुरादाबादी आदि।

कन्हैयालाल 'ज़ब्त'

कन्हैयालाल नाम और 'ज़ब्त' तख़ल्लुस, पिता का नाम मोहनलाल था। मुरादाबाद के रहने वाले थे। ज़की मुरादाबादी के शागिर्द थे। कलेक्ट्रेट फ़र्रुख़ाबाद में मुलाज़िम थे, लेकिन रिटायरमेंट के बाद मुरादाबाद में रहने लगे थे। 1890 ई. में देहान्त हुआ। ज़ब्त मुंशी देवीप्रसाद 'रब्त' मुरादाबादी के भाई थे।

वो कोठे पर चढ़े तो चश्मे-बद्दूर
उतारा चाँद को सबकी नज़र से
तड़पता है वो ज़ख़्मी नीम जाँ आज
जिसे मारा था कल तिरछी नज़र से
मुबारक 'ज़ब्त' इश्क़े-तेग़े-अबरू
सुबुकदोश हो गये अब बारे-सर से

+ + +

हमने आलम में क्या नहीं देखा
हाँ हसीं बावफ़ा नहीं देखा
जिसने मुँह आपका नहीं देखा
उसने नूरे-ख़ुदा नहीं देखा
हूरे-जन्नत को तो ख़ुदा जाने
आदमी आप-सा नहीं देखा
बहरे-हस्ती में आज तक ऐ 'ज़ब्त'
कोई भी आशना नहीं देखा

ज़ौक़ीराम 'ज़ौक़ी'

ज़ौक़ीराम 'ज़ौक़ी' के बारे में ज़्यादा मालूमात नहीं हो सकी। बस इतना लिखा हुआ मिलता है कि फ़क़ीरों का हाल बनाकर गली-मुहल्लों में इत्र बेचते फिरते थे। ख़ासतौर पर होली के दिनों में स्वाँग बनाकर ज़ोर ज़ोर से ग़ज़ले और नज़्में पढ़ते फ़िरते थे। लेकिन जिस तरह बड़े-बड़े तज़्किरा निगारों ने इनका ज़िक्र किया है, उससे मालूम होता है कि इनकी गिनती अपने समय के बड़े शायरों में होती थी।

मिलने से तसव्वुर में कुछ कम न मज़ा देखा
गर वो न हुआ उसकी तस्वीर है और मैं हूँ
यूँ रेख़्ता कहने को आलम में हज़ारों हैं
बदनाम पर ऐ 'ज़ौक़ी' एक 'मीर' है और मैं हूँ।

+ + +

देवीप्रसाद 'रब्त'

देवीप्रसाद का तख़ल्लुस 'रब्त' और पिता का नाम मुंशी मोहनलाल था। क़ौम के कायस्थ थे। शेरो-शायरी का शौक़ विरसे में मिला था। बड़े भाई कन्हैयालाल 'ज़ब्त' भी शायर थे। 1880 ई. में अदालत दीवानी ज़िला मुरादाबाद में पेशकार थे।

अजल भी तो नहीं आती बुरा हो सख़्त जानी का
अलम कब तक उठायें यार की ना-मेह्रबानी का
यही हैं लज़्ज़तें तो है यक़ीं क्या-क्या न रोयेंगे
अगर याद आयेगा पीरी में आलम नौजवानी का
न पूछ ऐ 'रब्त' हाले दिल ग़ज़ब में जान आई है
बुरा हो इश्क़ का या रब भला हो नौजवानी का

+ + +

क़ाज़ी ऐहतिशाम उद्दीन 'फ़रयाद'

क़ाज़ी ऐहतिशाम उद्दीन 'फ़रयाद' के पिता का नाम क़ाज़ी अज़ीमुद्दीन था। मुरादाबाद के मोहल्ला क़ाज़ी टोला में रहते थे। इनकी

प्रारम्भिक शिक्षा सर सय्यद के पंचायती मदरसे में हुई। बाद में एम.ए. ओ. कालिज अलीगढ़ के कामों में सर सय्यद का हाथ भी बँटाया। इनके कोई औलाद नहीं थी, अपने भतीजों क़ाज़ी शहाबुददीन और क़ाज़ी मज़हर क़य्यूम को औलाद की तरह पाला। क़ाज़ी शहाबुददीन अपने दौर के बड़े शायर हुए, जिनका तख़ल्लुस 'असर' था। इनके शार्गिदों 'क़मर' मुरादाबादी बहुत मशहूर हुए।

'फ़रियाद' मुरादाबादी का इन्तेक़ाल 1917 ई. में हुआ।

कलाम का नमूना:

है कमसिनी में मुरादों पे यार का जोबन
क़दम-क़दम पे क़यामत बपा अभी से है

+ + +

जी उठेंगे तिरी बातों से निगाहों के शहीद
आँख क़ातिल है तो हो, लब है मसीहा कैसा
मिल तो जाये कहीं महशर में पता क़ातिल का
सैकड़ों दावे हैं, इक ख़ून का दावा कैसा
निज़ा में हूँ मैं, मुझे देख के जी ख़ुश कर लो
तुमको अरमान था, इस वक़्त का कैसा कैसा

+ + +

किस क़यामत का दिया, क़ातिल ने महशर में जवाब
खूने-ना-हक़ का सबब, मेरी अदा थी, मैं न था
जाने वालों को कल ऐ 'फ़रियाद' मैं करता था याद
आज मेरी याद बाक़ी जा-बजा थी, मैं न था

+ + +

'आसी' ब्रजवासीलाल भटनागर

मुंशी ब्रजवासीलाल भटनागर तख़ल्लुस 'आसी'। इनके पिता धूम सिंह भी शायर थे। आसी मुरादाबाद के रहने वाले थे और तहसील अमरोहा में वासिल बाक़ी नवीस थे। ज़की मुरादाबादी के शागिर्द थे। 1888 ई. में

उनका दीवान 'नग़मा-ए-तरब' के नाम से छपा था। कुछ शेर प्रस्तुत हैं:

सर्द महरी से बुतों की उम्रभर खाई जो ठंड
बर्फ़ की सिल बन गया सीना मेरा पाई जो ठंड
क़ब्र पर अच्छा हुआ जाड़े में पाला पड़ गया
रात को छुप-छुप के उसके बाम पर खाई जो ठंड
ज़िन्दा थे जब तक जलाता ही रहा वो शोला रू
अब मिला है क़ब्र में आराम, कुछ पाई जो ठंड
आग की मानिन्द पानी का भी होता है असर
जल गया गुलज़ार शबनम से, बहुत पाई जो ठंड
और भी 'आसी' ज़्यादा गर्मी-ए-सौदा हुई
बैठकर शबनम में तनहा रातभर खाई जो ठंड

+ + +

क्या क़ाफ़िले आँखों से चले जाते हैं या रब
इस राह में नक़्शे-कफ़े-पा को नहीं देखा
करता है मेरे सामने हूरों की जो बातें
ज़ाहिद ने बुते-होश रुबा को नहीं देखा
हसरत मेरी जिस तर्ह मुझे पीट रही है
यूँ मैंने किसी अहले-अज़ा को नहीं देखा
हर ज़र्रे में ताबाँ है उसी मेह्र का जलवा
'आसी' कहें किस तर्ह ख़ुदा को नहीं देखा

+ + +

दिल में गर इश्क़ के सामान न पैदा होते
ऐसे हम क्या थे जो यूँ ख़ल्क़ में रुसवा होते
शोख़ चश्मी के मज़े उनसे उठाते क्या-क्या
बाग़े-हस्ती में जो हम नर्गिसे-शहला होते
दम निकलता न ग़मे-यास में बेहतर होता
काश दुनिया में न हम अहले-तमन्ना होते
काबा-ओ-दैर में कुछ फ़र्क़ न होता 'आसी'
अहले-दुनिया जो फ़रेबों से मुबर्रा होते

+ + +

मिर्ज़ा ग़ालिब का मुरादाबाद में आगमन

मुरादाबाद को यह गौरव भी प्राप्त है कि मिर्ज़ा ग़ालिब यहाँ चार बार आये। दो बार 1860 ई. में और दो बार 1865 ई. में।

पहली बार ग़ालिब 19 जनवरी 1860 ई. को दिल्ली से रामपुर जाते हुए 25, 26 जनवरी को मुरादबाद में रुके और फिर रामपुर पहुँचे। दूसरी बार रामपुर से वापसी में मुरादाबाद पहुँचे और यहाँ सर सय्यद के घर पर रुके। जबकि तीसरी बार 7 अक्तूबर 1865 ई. को दिल्ली से चलकर यहाँ पहुँचे और पाँच दिन रुकने के बाद 12 अक्तूबर 1865 ई. को रामपुर पहँचे। वहाँ 2 महीने 16 दिन रुकने के बाद 28 दिसम्बर 1865 ई. को पालकी में सवार होकर दिल्ली के लिये रवाना हुए, लेकिन बारिश की वजह से रामगंगा उफान पर थी। जैसे ही ग़ालिब की पालकी ने रामगंगा का पुल पार किया, पुल टूट गया और उनके साथी और सामान पीछे छूट गया। अत: अजीब कशमकश का सामना हुआ कि ग़ालिब मुरादाबाद में, सामान पुल के पार, ठण्ड का मौसम। उस वक़्त उनकी उम्र 70 वर्ष की थी। अत: बीमार पड़ गये। मुरादाबाद की सराय में पहुँचे और निम्नलिखित शेर पढ़ते-पढ़ते रात गुज़ारी:

गर्मे फ़रयाद रखा शक्ले निहाली ने मुझे
तब अमाँ हिज्र में दी, बर्दे लियाली ने मुझे

जैसे तैसे यह ख़बर नवाब मज्जु ख़ाँ के भाई नवाब सईद-उद-दीन ख़ाँ तक पहुँची, उन्होंने ग़ालिब को अपने घर बुलाया। उनके घर से तत्कालीन जज मोहम्मद हसन ख़ाँ उन्हें अपने घर ले गये। उनके वहाँ ग़ालिब पाँच दिन ठहरे, जब स्वस्थ हो गये तो 8 जनवरी 1866 ई. को दिल्ली पहुँचे।

अपने इस सफ़र की रूदाद उन्होंने अपने एक ख़त में लिखी है, जो उनके ख़तों के संग्रह में शामिल है।

मुरादाबाद में उस वक़्त 'ग़ालिब' के निम्नलिखित शागिर्द मौजूद थे:

मुरादाबाद में ग़ालिब के शागिर्द :

(1)	लक्ष्मण नारायण 'मफ़्तूँ' मुरादाबादी	(मृ. 1887 ई.)
(2)	मरदान अली ख़ाँ 'राना' मुरादाबादी	(मृ. 1879 ई.)
(3)	मोहम्मद हुसैन 'तमन्ना' मुरादाबादी	(मृ. 1900 ई.)
(4)	क़ाज़ी जमशेद अली 'जम' मुरादाबादी	(मृ. 1906 ई.)
(5)	मिर्ज़ा नसीरुद्दीन 'अलील' मुरादाबादी	(मृ. 1909 ई.)
(6)	महमूद अख़्तर 'रिज़वान' मुरादाबादी	(मृ. 1911 ई.)

पण्डित लक्ष्मण नारायण 'मफ़्तूँ' मुरादाबादी

इनके पिता का नाम पं. गोवर्धन दास था। पण्डित लक्ष्मण नारायण 'मफ़्तूँ' 1821 ई. में पैदा हुए और 1887 ई. में देहान्त हुआ। उर्दू और फ़ारसी दोनों भाषाओं पर अच्छी पकड़ थी।

मुर्ग़े बिस्मिल हो गये मेरा तड़पना देखकर
लोटे हैं अहले तमाशा ये तमाशा देखकर

\+ + +

मरदान अली ख़ाँ 'राना' मुरादाबादी

'राना' के पिता का नाम रहम अली ख़ाँ था। भट्टी मोहल्ले के रहने वाले थे। रियासत जोधपुर में वज़ीर थे। पहले 'मुज़तर' फिर 'राना' और बाद मे 'निज़ाम' तख़ल्लुस रखा था। लेकिन 'राना' ज़्यादा मशहूर हुआ। शायरी के अलावा मिस्मेरिज़्म, भारतीय संगीत और इतिहास में भी दिलचस्पी थी। इस सम्बंध में तिलिस्मे-नज़र, गुंचा-ए-राग, तारीख़-उल-बिलाद और तारीख़े-मारवाड़ इनकी प्रमुख किताबें हैं। इनकी शायरी का कुल्लियात दिसम्बर 1875 ई. में नवलकिशोर प्रेस से छपा था। इनका इन्तेक़ाल दो जून 1879 ई. को श्रीनगर कश्मीर में हुआ। इनके कुछ शेर प्रस्तुत है:

वस्ल की शब भी, शबे फ़ुरक़त हुई
रातभर वो शोख़ शरमाता रहा

इश्क़ का 'राना' मरज़ है ला-दवा
कब सुना तूने कि वो जाता रहा

+ + +

ज़िन्दगी ख़्वाब है ग़ाफ़िल, ये ज़माना है ख़याल
तूने इस पर भी न अब तक उसे नादाँ छोड़ा

+ + +

दैर से मैं हरम में जा निकला
बुतकदा ख़ाना-ए-खुदा निकला

+ + +

पता ये है मिरी जाने जहाँ का ऐ क़ासिद
कुशादा सीना है, पतली कमर, दहन है तंग

+ + +

मर जाये, भूलकर न लगाये किसी से दिल
या रब किसी बशर का किसी पर न आये दिल

+ + +

ख़ाकसारी न छोड़ना 'राना'
एक दिन ख़ाक ही में जाना है

+ + +

मोहम्मद हुसैन 'तमन्ना' मुरादाबादी

'तमन्ना' मुरादाबाद के मोहल्ला क़ाज़ी टोला के रहने वाले थे। 1810 ई. में पैदा हुए। उर्दू शायरी में ज़की मुरादाबादी के और फ़ारसी में 'ग़ालिब' के शागिर्द थे। इनकी शोहरत ग़ज़लों के मुक़ाबले नातिया शायरी की वजह से ज़्यादा है। इस क्षेत्र में इनका वही स्थान है, जो 'मर्सिया निगारी' में मीर अनीस का है। यही नहीं, बल्कि वह नातिया काव्य के सबसे पहले आलोचक भी है। इसके अलावा इनका एक और कारनामा भी है, वह यह कि उर्दू में हम्दिया शायरी (ईशवन्दना) का सबसे पहला दीवान इन्हीं का छपा था। इनकी नातिया शायरी के पाँच

दीवान छपे जबकि ग़ज़लों का केवल एक दीवान 'नाला-ए-तमन्ना' के नाम से 1857 ई. में प्रकाशित हुआ।

तमन्ना का इन्तक़ाल 1900 ई. में ख़ास ईद के दिन हुआ। इनका मज़ार लाल बाग़ में तकिये वाली मस्जिद के निकट है।

प्रस्तुत हैं तमन्ना मुरादाबादी के कुछ शेर:

कतर के पर, दिये बाज़ू भी तोड़ ज़ालिम ने
हुआ असीरों से क्या सख़्त बदगुमाँ सय्याद

+ + +

हमारे दिल से ये कहता है शौक़े पा-बोसी
जो यार पीसे तो पिस जाइये हिना होकर

+ + +

इस इश्क़ का कुछ नहीं है मज़हब
यकसाँ है इसे अज़ान-ओ-नाक़ूस

+ + +

जबसे गई है आँख से आई नहीं इधर
ढूँढूँगा रू-ए-यार पे जाकर नज़र को मैं

+ + +

सच तो है क्योंकर मिले मुझसे दिल उस नौख़ेज़ का
मेरी पीरी और जवानी उसकी गदराई हुई

+ + +

क़ाज़ी जमशेद अली 'जम' मुरादाबादी

क़ाज़ी जमशेद अली 'जम' के पिता का नाम विलायत अली था। मुरादाबाद के मोहल्ला शैदी सराय के रहने वाले थे। 'जम' उर्दू, फ़ारसी और अंग्रज़ी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। जयपुर में फ़ौज के सररिश्ता-ए-दार, कोयटा में हाकिमे अपील और रामपुर में मुनसरिमे-जजी के पदों पर आसीन रहे। इन्होंने मुरादाबाद से साप्ताहिक 'आफ़ताबे हिंद', साप्ताहिक 'जामे-जमशेद', साप्ताहिक 'रुहेलखंड पंच' और

मासिक 'बुलंद अख़्तर' नामक अख़ाबार निकाले। जबकि 'तवारीख़-उल-हामिद' और 'खुमख़ाना-ए-जावेद' इनकी मशहूर पुस्तकें हैं। इनकी एक किताब 'कलीदे-जफ़र' शैख़ मुज़फ़्फ़र मुरादाबादी के नाम से भी छपी थी। इनकी मृत्यु 3 जून 1906 ई. को हुई। इनके बेटे क़ाज़ा अब्दुल अली 'आबिद' दाग़ देहलवी के मशहूर शागिर्द थे।

'जम' शायरी में 'ग़ालिब' के शागिर्द थे। विभिन्न तज़्किरों से प्राप्त इनकी ग़ज़लों के चयनित शेर प्रस्तुत हैं:

नेरंगे जहाँ भी है अजब भूल भुलईयाँ
इसमें जो फंसा भूल गया रास्ता घर का
किस प्यार से लेता है बलाएँ यदे बैज़ा
अल्लाह रे! जोबन तिरी उल्फ़त के शरर का

+ + +

बिखरे हुए बालों में वो आरिज़ के थे जलवे
गोया कि घटा से था कोई चाँद सा चमका

+ + +

गुंचे हँस हँस कर बलाएँ लेंगे चट चट शौक़ से
बाग़ बाग़ आने से तेरे बाग़बाँ हो जायेगा

+ + +

न दागे़ दिल के सिवा कोई अपने काम आया
ये बेकसी में चराग़ अपना सरफ़राज़ हुआ

+ + +

आहिस्ता कान में नहीं मालूम क्या कहा
हर गुंचे को नसीमे सहर ने जगा दिया

+ + +

रह गई दिल की तमन्ना-ए-शहादत दिल में
हाय भूले से भी क़ातिल को न मैं याद आया

+ + +

'रिज़वान' मुरादाबादी

मोहम्मद रिज़वान अली ख़ाँ नाम और तख़ल्लुस 'रिज़वान' था। इन्हे महमूद अख़्तर के उपनाम से भी जाना जाता है। मुरादाबाद के मोहल्ला बारादरी के समीप बाग़ बहादुर गंज के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम रफ़ी अली ख़ाँ था जो शायर भी थे और 'अली' तख़ल्लुस था। उन्होंने 1857 ई. के स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और फ़ाँसी की सज़ा हुई।

जब मिर्ज़ा गालिब रामपुर आये तो 'रिज़वान' उनके शागिर्द हुए थे। ग़ज़लों से ज़्यादा नात पर ध्यान देते थे। अमीर मीनाई, दाग़ देहलवी और जलाल लखनवी जैसे शायरों ने इनकी शायरी की सराहना की है। 'रिज़वान' का कुल्लियात 'तस्वीरे-ख़ूबी' के नाम से 1907 ई. में छपा था। जब हज करने गये तो इन्हें 'हस्सान-उल-हिन्द' की उपाधि प्रदान की गई। इन्होंने 1888 ई. में नातिया काव्य की मासिक पत्रिका 'ख़्वाने-ख़लील' भी प्रकाशित की थी।

'रि़वान' का इन्तेक़ाल 1911 ई. में हुआ।

'हसरत' मोहानी के तज़्किरे 'निकाते-सुख़न' से रिज़वान की ग़ज़लों के कुछ चयनित शेर प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

रोग सारे मिट गये, उम्रे अबद हासिल हुई
जामे उल्फ़त सागरे आबे बक़ा से कम नहीं

+ + +

तुम्हारी दौलते दीदार पाकर
तवंगर हो गये हम मुफ़लिसी में

+ + +

जोकि दूरी में मज़ा है वो हुज़ूरी में कहाँ
वस्ल के रोज़ दुआए शबे हिज्राँ माँगूँ

+ + +

माल क्या माल है दौलत की हक़ीक़त क्या है
हम अभी नज़्र करें तुम जो दिलो-जाँ माँगो

+ + +

खींच ले उस महे-ख़ूबी को कशिश दिखलादे
आज ऐ जज़्बा-ए-दिल तेरा असर देखें तो
ये ज़िया अर्श के तारों को कहाँ हासिल है
महो-ख़ुर्शीद मिरे दाग़े जिगर देखें तो

+ + +

दस्तूरे-मोहब्बत का तक़ाज़ा है कि कर ज़ब्त
बेताबियाँ कहती हैं तड़पने में मज़ा है

+ + +

जिसे देखा वही मस्ते मये ग़फ़लत नज़र आया
सराय आलमे-फ़ानी भी बेहोशों की बस्ती है

+ + +

अभी फ़र्शे ज़मीं पर था अभी अर्शे बरीं पर हूँ
कहाँ से ले उड़ी मुझको कहाँ तक बेख़ुदी मेरी

+ + +

उपरोक्त शागिर्दों के अलावा मुरादाबाद में निम्नलिखित लोगों से 'ग़ालिब' के ख़ास सम्बंध रहे:

(1) मोहम्मद हसन ख़ाँ 'असीर' (मृ. 1909 ई.)
(2) नवाब सईद-उद्दीन ख़ाँ (मृ. 1886 ई.)
(3) मौलवी सय्यद अब्दुर्रशीद (मृ. 1904 ई.)
(4) हिदायत अली 'तम्कीन' (मृ. 1900 ई. से पहले)
(5) गुलाम अली ख़ाँ 'वहशत

'ग़ालिब' के अलावा उनके युगीन दूसरे मशहूर शायर मोमिन ख़ाँ 'मोमिन' के दो शागिर्दों के नाम भी इतिहास में मिलते हैं, उनमें से एक क़ाज़ी नज्म-उद-दीन 'बर्क़' और दूसरे गुलाम अली ख़ाँ 'वहशत' जो ग़ालिब के दोस्त थे।

मोमिन ख़ाँ 'मोमिन' के शागिर्द
क़ाज़ी नज्म-उद-दीन 'बर्क़'

बर्क़ के पिता का नाम क़ाज़ी सिराजुद्दीन था। 1825 ई. में बुलंदशहर में पैदा हुए। दिल्ली, आगरा और इलाहाबाद वग़ैरह में जज रहे, जब मुरादाबाद पहुँचे तो यहीं के होकर रह गये। यहीं 1900 ई. में इन्तक़ाल हुआ। 1857 ई. से पहले, नौजवानी में ही शायर की हैसियत से मशहूर हो गये थे। मोमिन ख़ाँ 'मोमिन' के शागिर्द थे।

'बर्क़' के कुछ शेर पेश किये जा रहे हैं:

उम्र तो सारी कटी कस्बे-कमालात में 'बर्क़'
याँ न पुरसाँ ही कोई एहले-हुनर का निकला

+ + +

पूछा जो उसने आप हमें चाहते हैं क्या
बे-साख़्ता ज़बाँ से मिरी हाँ निकल गया

+ + +

किस वास्ते ख़ुश आयी तुझे दिल की ख़राबी
ऐ ख़ाना बर-अन्दाज़, ये तेरा ही तो घर था

+ + +

वाँ दिल में ये कि बोसा-ए-पा भी न दीजिये
याँ शौक़ ये कि चूमिये उनकी ज़बाँ तलक

+ + +

तेरे सितम से मौत की ख़्वाहिश हुई हमें
वरना हमारे दिल में फ़क़त तेरी चाह थी

+ + +

गो क़हर की निगाह है, पर देखते तो हैं
क्योंकर कहें कि आह में अपनी असर नहीं

+ + +

हरम-ओ-दैर के झगड़े तिरे छिपने से पड़े
वरना तू पर्दा उठा दे तो, तू ही तू हो जाये

+ + +

तू न होगा तो तिरा दर्द रहेगा दिल में
ये न होगा कभी ख़ाली मेरा पहलू हो जाये

+ + +

दिन रात पड़ा रहता हूँ दरवाज़े पे अपने
इस ग़म में कि कोई कभी आता था, इधर से

ग़ुलाम अली ख़ाँ 'वहशत'

'वहशत' के पिता का नाम फ़रहत-उल्लाह ख़ाँ था। वहशत की पैदाइश 1807 ई. में मुरादाबाद में हुई और परवरिश बनारस व दिल्ली में हुई। ब्रिटिश दौर में बड़े पदों पर आसीन रहे। 1847 ई. में महाराजा अलवर की सरकार में मुलाज़िम थे। कमउम्री में ही शायरी के मैदान में मशहूर हो गये थे। ग़ालिब के दोस्तों में थे। 'ग़ालिब ने इनका ज़िक्र अपने एक शेर में इस तरह किया है:

वहशत-ओ-शेफ़्ता अब मर्सिया कहवें शायद
मर गया ग़ालिबे-आशुफ़्ता-नवा कहते हैं

'वहशत' के कुछ शेर नीचे लिखे जा रहे हैं:

जो न जाता हो कहीं कूचा-ए-जानाँ के सिवा
ऐसे दीवानों को कुछ हाजते ज़ंजीर नहीं

+ + +

देखूँ क्या सू-ए-बहिश्त, आँखें मिरी
अट रहीं हैं, ख़ाके कू-ए-यार से

+ + +

मैं तो मैं सच तो ये है, दुशमन न बदले ऐ फ़लक
मलगिजा उसका दुपट्टा चादरे महताब से

दो अन्य प्रसिद्ध शायर

अनवार हुसैन 'तस्लीम'

इनका तारीख़ी नाम ख़ुर्शीद अली था, लेकिन अनवार हुसैन के नाम से मशहूर हुए। 'तस्लीम' तख़ल्लुस था। इनका जन्म 1815 ई. में सहसवान में हुआ। पिता का नाम मुंशी ऐहतिशाम-उद-दीन था, जो मुरादाबाद में वकालत करते थे। अत: 'तस्लीम' बचपन में ही मुरादाबाद आगये थे। इनकी शादी भी यहीं हुई। इनका इन्तेक़ाल 9 मई 1892 ई. को हुआ और मुरादाबाद के मशहूर मोहल्ला गलशहीद के क़ब्रिस्तान में दफ़्न हुए।

तस्लीम शायरी में अली बख़्श 'बीमार' के शागिर्द थे। इसके अलावा इन्होंने मीर आरिफ़ अली 'आरिफ़' से भी शिक्षा हासिल की थी।

राजा किशन कुमार 'वक़ार' तस्लीम के चहीते शागिर्द थे। अत: इनकी ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा उन्हीं की सरकार में गुज़रा।

शायरी के अलावा तारीख़गोई में भी उस्ताद थे। इस विषय पर 'मुलख़्ख़से तस्लीम' इनकी मशहूर किताब है, जो फ़ारसी में है, उर्दू में 'मुल्हिम-उत-तारीख़'के नाम से उसका तर्जुमा छप चुका है। इसके अलावा भी इनकी बहुत से किताबें थीं, जो छप नहीं सकीं और उन्हें 'तस्लीम' ने ख़ुद ही जला दिया था, क्योंकि उनके पास उन्हें छपवाने के लिये पैसे नहीं थे। यह बड़ी विचित्र बात है कि भोपाल, रामपुर और लखनऊ जैसे दरबारों और विशेष रूप से राय किशन कुमार से अच्छे सम्बंध होने के बावजूद उनके पास इतना पैसा नहीं हो सका कि वह अपनी किताबें छपवा सकते।

'तस्लीम' के कुछ शेर पेश किये जा रहे हैं:

बोसे का नाम सुनके चबाता है अपने होंट
मेरा ये मुँह कि वस्ल की दे वो ज़बाँ मुझे

सच है मिस्ल, भलाई का बदला बुराई है
मैं दूँ दुआएँ, देते हो तुम गालियाँ मुझे
करते हैं याद वो कि अजल ने किया है याद
आती हैं आज हिचकियों पर हिचकियाँ मुझे
हर मा-रके में खुलते हैं जौहर कमाल के
मानिन्दें तेग़ तेज़ मिली है ज़बाँ मुझे

+ + +

बाज ले तारे नज़र से और रगे-जाँ से ख़िराज
आपकी पतली कमर, नाज़ुक कलाई आपकी

+ + +

दैरो-हरम में बैठने देता नहीं कोई
उठकर तुम्हारे दर से कहीं का नहीं रहा

+ + +

अवराक़ गुलों के हैं परेशान चमन में
गुंचों से छुपाया न गया राज़े-तबस्सुम

+ + +

ज़ाहिद जो तिरा नुक्ता-ए-तौहीद समझता
सजदे से बुतों के उसे इनकार न होता

+ + +

इज़हारे-वफ़ा का फ़ायदा क्या
मैं आपको ख़ूब जानता हूँ

+ + +

टूट जाता है कभी और कभी भर आता है
दिले पुर-दर्द है सीने में कि छाला कोई

+ + +

रंग अपना जमाना है जो 'तस्लीम' गुलों को
ज़ख़्मों से मिरे सीख लें अन्दाज़े-तबस्सुम

+ + +

मुरादाबाद मे 'तस्लीम' के निम्नलिखित शार्गिद मशहूर हुए:

(1) शहाब-उद-दीन 'साक़िब'
(2) अमजद अली 'नय्यर'
(3) कुँवर किशन कुमार 'वक़ार'
(4) पीतम राये 'शुक्र'
(5) मोहम्मद अशफ़ाक़ अली 'मुज़तर'
(6) ठाकुर राधाकृष्ण 'मुशताक़'
(7) मिर्ज़ा अहमद शाह बेग 'जौहर'
(8) एस. इब्ने अली 'नय्यर'

कुँवर किशन कुमार 'वक़ार'

राय कुँवर किशन कुमार का तख़ल्लुस 'वक़ार' था। इनके पिता राय प्रद्युम्न किशन कुमार बदायूँ व मुरादाबाद के इलाक़ों के ज़मींदार थे। इनके पूर्वजों को मोहम्मद शाह बादशाह ने मुरादाबाद में वकालत का पद दिया था। उसी वक़्त से यह ख़ानदान यहाँ आबाद हुआ। अंग्रेज़ सरकार ने राय प्रद्युम्न किशन कुमार के 1857 ई. के कारनामों से खुश होकर 1860 ई. में इन्हें राजा का ख़िताब दिया।

राय प्रद्युम्न किशन कुमार भी शायर थे, इनका तखल्लुस 'हादी 'था। उर्दू-फ़ारसी भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। अत: उनके बेटे राय किशन कुमार को यह शौक़ विरासत में मिला, उन्होंने उस दौर के मशहूर शायर अनवार हुसैन 'तस्लीम' को अपने दरबार में रखा और खुद भी उनके शागिर्द बने। जैसाकि अपने एक शेर में उन्होंने कहा भी है कि :

हज़रते 'तस्लीम' से मुझको तलम्मुज़ है 'वक़ार'
वाजिब-उत-तस्लीम अब मेरा सुख़न हो जायेगा

'वक़ार' का पहला दीवान 1874 ई. में 'बहारिस्ताने अशआर' के नाम से और दूसरा दीवान 1899 ई. में 'दीवाने वक़ार' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अलावा एक मस्नवी ''इख़्तरा-ए-जदीद'' भी लिखी। ये तीनों किताबें मुंशी नवल किशोर के प्रेस से छपी थीं।

'वक़ार' के चन्द शेर यहाँ पेश किये जा रहे हैं:

दैरो-हरम में जल्वा-ए-कुदरत है आशकार
ज़ुन्नारो-सुबहा में नहीं फ़र्क़ एक तार का
चश्मे साक़ी चूमली, कल रात मस्ती में 'वक़ार'
काम हमसे ऐन ग़फ़लत में हुआ, हुशियार का

+ + +

फ़रियाद मेरी सुनते ही, वो बाम पे आया
अल्लाह ये नाले में कहाँ से असर आया

+ + +

वो ये कहते हैं कि नंग आती है तुझसे मिलते
तू सदा फ़िरका-ए-उश्शाक़ में बदनाम रहा

+ + +

चाँद से मुँह का बोसा ले लूँगा
फूल तोड़ूँगा आज नसरीं का

+ + +

इन बुतों की अगर ज़बाँ होती
दावा कर बैठते ख़ुदाई का

+ + +

अगर ग़ुंचा चटका, कहा बुलबुलों ने
यह रुस्वाई का है ढिंढोरा किसी का

+ + +

'वक़ार' नक़्ल से मेरी हुआ न ग़ैर को फ़ैज़
कि हड्डी खाने से उल्लू कभी हुमा न हुआ

+ + +

गुले नौ-ख़ेज़ है तू, बुलबुले-बद-मस्त हूँ मैं
इश्क़ हिस्सा है मिरा, हुस्न है हिस्सा तेरा

+ + +

चोखे से चोखा है, ठर्रा दस्ते साक़ी का मुझे
वरना आला क़िस्म की बदतर से है बदतर शराब

+ + +

इक बार भी न कह सका, लुकनत की वज्ह से
सौ बार गोकि वस्ल की होंटों पे आई बात

+ + +

ये इक छाँव है चलती फिरती हुई
फिर इस दौलते-हुस्न पर क्या घमण्ड

+ + +

रह गया पासे-अदब से उठके हाथ अपना 'वक़ार'
वरना था कुछ और दिल में उसको तनहा देखकर

+ + +

बढ़ी ये ज़ोफ़ की कुव्वत, घटे जो उम्र के दिन
उठे तो हाय जो बैठे तो आह करते हैं

+ + +

मुल्के-अदम का अज़्म है, तोशा नहीं है पास
दे डाल एक बोसा कि ज़ादे-सबील हो
तुमसा मुरादाबाद में कोई नहीं 'वक़ार'
एहसान में, करम में, अदीमुल मसील हो

+ + +

ख़ाना-ए-दिल में है, ख़याले-सनम
ये वह काबा है, जिसमें मूरत है

+ + +

मुरादाबाद में 'दाग़' के शागिर्द

दाग़ का मुरादाबाद से गहरा सम्बंध रहा। 'दाग़' जब भी रामपुर आते, मुरादाबाद में ज़रूर रुकते। उनका क़याम शौकत बाग़ में रहता था जहाँ शेरो-शायरी की महफ़िलें सजतीं थीं। क़ाज़ी शौकत साहब उनके ख़ास शागिर्दों में गिने जाते थे। इनके अलावा भी यहाँ उनके कई शागिर्द मौजूद थे, जिनके नाम निम्नलिखित हैं:

(1) छब्बालाल 'असर'
(2) क़ाज़ी शौकत हुसैन 'शौकत'
(3) मिर्ज़ा मोहम्मद रज़ा बेग 'शोर'
(4) क़ाज़ी अब्दुल अली 'आबिद'

मुमकिन है कुछ और नाम भी हों, लेकिन लेखक को यही नाम मिल सके। इनमें से कुछ प्रमुख शागिर्दों का संक्षिप्त परिचय यहाँ लिखा जा रहा है:

क़ाज़ी शौकत हुसैन 'शौकत'

क़ाज़ी शौकत हुसैन 'शौकत' की पैदाइश 6 जनवरी 1865 ई. को क़ाज़ी तजम्मुल हुसैन के घर में हुई। आपके पूर्वज आलमगीर बादशाह के वक़्त से मुरादाबाद के क़ाज़ी चले आ रहे थे। 'शौकत' उर्दू के अलावा अरबी और फ़ारसी भी ख़ूब जानते थे। थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी भी जानते थे। क्योंकि इनके घराने में इल्मो-अदब और शेरो-शायरी का माहौल था। लिहाज़ा शौकत को बचपन से शायरी का शौक़ लग गया था। जब होश सँभाला तो अपने ज़माने के मशहूर शायर 'दाग़' देहलवी के शागिर्द हो गये।

मुरादाबाद का ऐतिहासिक शौकतबाग़ इन्हीं की यादगार है, जो वर्तमान में एक मोहल्ले का रूप ले चुका है।

'शौकत' बड़े ख़ुशमिज़ाज और ज़िन्दा दिल इंसान थे। कहा जाता है कि अगर कोई रोता हुआ आदमी उनके पास कुछ देर बैठ जाता

तो वह हँसता हुआ उठता था। सर रज़ा अली ने उनकी मेहमान नवाज़ी के बारे में लिखा है कि मुमकिन नहीं था कि कोई अहले-कमाल (प्रतिभावान) मुरादाबाद आये और क़ाज़ी साहब के वहाँ उसकी दावत न हो। इसके अलावा शहर या ज़िले में होने वाली कोई सियासी या समाजी या अदबी तहरीक ऐसी नहीं होती जिसमें वह शामिल न होते हों। उस दौर में म्यूनिसिपल बोर्ड की मेम्बरशिप हो या वाइस-चेयरमैनशिप या बड़े शैक्षिक संस्थान जैसे हैविट मुस्लिम इंटर कालिज या दूसरे संस्थान हों, क़ाज़ी साहब हर जगह नज़र आते थे। यह मुरादाबाद के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे।

अप्रैल 1934 ई. में जब इनका इन्तक़ाल हुआ तो, शोक में सभी अदालतें और स्कूल व कालेज बन्द कर दिये गये थे।

क़ाज़ी साहब की कोठी शौकत बाग़ में हर महीने मुशायरा होता था, जिसकी कार्यवाही एक मासिक गुलदस्ते (शेरो-शायरी की पत्रिका) 'गुलदस्ता-ए-शौकते सुख़न' के नाम से छपती थी।

इनका दीवान ''कुल्लियाते शौकत'' के नाम से 1916 ई. में छपा था, जिसमें उर्दू वर्णमालानुक्रम की सभी रदीफ़ें शामिल हैं।

लाला श्रीराम ने अपने तज़्किरे 'खुम-ख़ाना-ए-जावेद' में लिखा है कि 'शौकत' के कलाम में अपने उस्ताद 'दाग़' का रंग साफ़ झलकता है।

पेश है कुछ चुनिंदा कलाम:

शबे-वस्ल वह हाय अंगड़ाई लेकर
मिरी गोद में लेट जाना किसी का
निगाहें बचाये, बदन को चुराये
वो रातों को छुप-छुप के आना किसी का

+ + +

माँगना बोसा मिरा और सर झुकाकर वस्ल में
हाय वो कहना तिरा, मिल जायेगा, मिल जायेगा

+ + +

जोश पर है उनके जोबन का उभार
जान देने का ज़माना आ गया

+ + +

सिसकियाँ ले-लेके वो कहना किसी का वस्ल में
देख ज़ालिम मेरे होंटों पर निशाँ हो जायेगा

+ + +

मौत का पैग़ाम है क्या ज़िन्दगी
जो हुआ पैदा फ़ना हो गया

+ + +

देख ज़ालिम छोड़ दे जुल्मो-सितम
जो सतायेगा, सताया जायेगा

+ + +

बिखरी हुई हैं ज़ुल्फ़ें, उतरा हुआ है चेहरा
आये हो याँ किसी के तुम घर ज़रूर होकर

+ + +

आशिक़ को तेरे कुफ़्र से ईमाँ से क्या ग़रज़
हिन्दू से क्या ग़रज़ है, मुसलमाँ से क्या ग़रज़

+ + +

दारा का है पता, न सिकन्दर का है निशाँ
क्या-क्या ज़मीं में दफ़्न हुए नामदार हैफ़

+ + +

जब कहा मैंने, तुमने छीना है
बोले क्यों लेते हम पराया दिल

+ + +

और अब नामो निशाँ क्या चाहिये
आपके आशिक़ तो कहलाते हैं हम

+ + +

किसको सब कहते हैं महबूबे-ज़माना, तुमको
किसको सब जानते हैं इश्क़ में यकता, मुझको

+ + +

मिरा जिगर है, कलेजा है, सर है, सीना है
छुरी के, तीर के, तलवार के, सिनाँ के लिए

+ + +

बैठकर फ़ितने उठाये आपने
जब उट्ठे बरपा क़यामत हो गई

+ + +

पूछते क्या हो, तलबगार हैं किनके? उनके
जान से, जी से, ख़रीदार हैं किनके? उनके
किसको बेवज्ह सताया है उन्होंने? हमको
और हम फिर भी तलबगार हैं किनके? उनके

+ + +

क़ाज़ी अब्दुल अली 'आबिद'

क़ाज़ी अब्दुल अली 'आबिद', जमशेद अली 'जम' के बेटे थे। इनकी पैदाइश 1870 ई. में हुई। शुरू में अपने वालिद को कलाम दिखाया फिर 'दाग़' के शागिर्द हुए, उस वक़्त 'दाग़' मुरादाबाद आते-जाते रहते थे। इनकी फ़िक्र और ज़बान की सादगी से 'दाग़' बहुत प्रभावित थे और इन्हे प्यार से 'फ़ख़्रे दाग़' (दाग़ का गौरव) कह कर पुकारते थे। इनकी पकड़ शायरी की सारी विधाओं पर थी। इसके अलावा कई नॉविल भी लिखे। ग़ज़ल संग्रह 'प्यारी प्यारी ग़ज़लयात' के नाम से छपा था। आबिद साहब मशहूर अख़बार ''मुख़बिरे आलम'' के सम्पादक थे, जो 8 जून 1903 ई. को जारी हुआ था। इसके अलावा अख़बार 'जामे-जमशेद', 'रुहेलखण्ड पंच' और 'बुलंद अख़्तर' के सह-सम्पादक भी रहे। इनका इन्तक़ाल 13 नवम्बर 1943 ई. को हुआ और हज़रत शैख़ अला-उद-दीन के क़ब्रिस्तान में दफ़्न हुए।

'आबिद' साहब के बेटे आबिद अली रिज़वी 'जौहर' (1896 ई. -1976 ई.)भी शायर थे। जौहर के दो बेटे थे: हैदर अली और मज़हर अली। मज़हर अली के तीन बेटे हैं: मसूद मज़हर, फ़ीरोज़ मज़हर और मंसूर मज़हर, जो अपने ख़ानदानी विरसे को सँभाले हुए हैं।

'आबिद' साहब के कुछ शेर प्रस्तुत किये जा रहे हैं:

सदमा-ए-हिज्र पे हम सब्र तो करते लेकिन
काम वो क्या करें, जो काम हो बेकारों का

+ + +

वो दास्ताने-दर्दे-जिगर सुनके हँस दिये
ऐसों से क्या कहे कोई फिर माजरा-ए-दिल
ज़ालिम कोई हिसाब भी है जुल्म का तिरे
कितने जिगर दुखाये हैं, कितने सताये दिल
'आबिद' को अर्ज़े-हाल में क्या उज्र है, मगर
दिल से कोई सुने तो कहे माजरा-ए-दिल

+ + +

ये हसीं रोज़ नया दिल जो लिया करते हैं
कुछ नहीं खुलता है, क्यों लेते हैं, क्या करते हैं

+ + +

इस शक्ल से अब देख लिया करते हैं उनको
अग़यार की महफ़िल में, कभी राहगुज़र में
पर्दे में भी पर्दा है, कोई आँखों का पर्दा
दिल में मिरे तुम रहते हो, फिरते हो नज़र में

+ + +

वो कुछ ऐसे बिगड़ बैठे, मनाये से नहीं मनते
हुई थी बातों-बातों में यूँही तकरार थोड़ी सी

+ + +

सदक़े उस शोख़ी के, उस अन्दाज़ के, उस नाज़ के
आपही छेड़ा मुझे और आप शर्माने लगे

+ + +

शिकायत क्या करूँ 'आबिद' मैं उनकी बदमिज़ाजी की
ख़फ़ा होना, बिगड़ना, रूठना, बचपन की आदत है

+ + +

ख़िरमने-दिल पर मिरे बिजली गिरी अच्छा हुआ
दो घड़ी को यह सियाह-ख़ाना भी रोशन हो गया
ऐतबार अब किसका कीजे, दोस्त किसको जानिये
दिल मिरे पहलू में रहकर मेरा दुश्मन हो गया
मुँह निकल आया ज़रा सा शैख़ का, वाइज़ का भी
जो बुतों के इश्क़ में 'आबिद' बिरहमन हो गया

+ + +

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के बीच की कड़ी

अली हुसैन 'सह्बा'

अली हुसैन 'सह्बा' मुरादाबाद के बुज़ुर्ग शायर थे, 1860 ई. में पैदा हुए और 90 वर्ष की उम्र में 1950 में इन्तक़ाल हुआ। किसरौल के रहने वाले थे। मोहल्ला गलशहीद में बर्फ़ख़ाने के पास औद्योगिक पाठशाला में अध्यापक थे। 'मक़्तूल' मुरादाबादी के शागिर्द थे। जिगर मुरादाबादी 'सह्बा' का बहुत सम्मान करते थे और इनकी शायरी पसंद करते थे। इनके कलाम का कोई संग्रह नहीं छप सका था। लेखक को इनके ख़ानदान के एक शख़्स जनाब मोहम्मद यामीन साहब से पुराने काग़ज़ों की एक पोटली मिली, जिसमें 'सहबा' के नाम कुछ पत्र थे, जो वास्तव में मुशायरों के दावत-नामे थे। उनमें से अधिकांश के पीछे उस मुशायरे में पढ़ी जाने वाली ग़ज़ल लिखी हुई थी। अतः वहीं से कुछ शेर प्रस्तुत किये जा रहे हैं:

संगे-दर तेरा न हाथ आये तो मिट जाये जबीं
आँखें फूटें जो मयस्सर तिरा दीदार नहो
जो सदा आई, मैं समझा तिरी आवाज़ आई
इस क़दर भी कोई मह्वे-सुख़ने-यार न हो

\+ + +

मस्जिदों की हों सदाएँ कि सनमख़ाने की
जो पुकारे उसे, आता है, ज़रूर आता है

\+ + +

वाइज़ छुटा न छूटे मस्तों का ये क़रीना
सौ बार तौबा करना, सौ बार जाम पीना
क्या पी रहे हो तनहा, हँसते हैं जामो-मीना
दस्तूरे-मैकशी है, 'सह्बा' मिलाके पीना

\+ + +

बहुत इंसाफ़ की उम्मीदें थीं रोज़े-महशर
चल दिये इतना वो कहकर हमें कुछ याद नहीं

+ + +

अच्छा गेसू न सही, रुख़ ही दिखा दो इकबार
शाम होने नहीं देते, तो सहर होने दो
मेरे ईसा इसी क़ाबिल हैं तुम्हारे बीमार
न इधर होने दो उनको, न उधर होने दो

+ + +

बढ़ते हैं दिल में और शहादत के वलवले
ख़ंजर को देखकर हमें देखा न कीजिये

+ + +

नीची निगाह, उठती जवानी को क्या कहूँ
दुनिया-ए-दिल को ज़ेरो-ज़बर देखता हूँ मैं

+ + +

तुम कहते हो दिल की हक़ीक़त क्या
दुनिया-ए-हक़ीक़त दिल ही तो है

+ + +

क्या पूछते हैं आप जवानी का माजरा
ये भी ख़बर नहीं किधर आई, कहाँ गई
क्या कहिये मैकदे की उदासी का माजर
'सहबा' के साथ रौनक़े-बज़्मे जहाँ गई

+ + +

लगाओ ठोकरें दिल को कि पायमाल करो
तुम्हारी याद इसी ख़ानमाँ ख़राब में है

+ + +

रुख़ दिखाकर छीने लेते हैं वो दिल
दिन दहाड़े ही लुटा जाता हूँ मैं

तेरे कूचे में बनी है क़ब्र क्या
हर किसी की ठोकरें खाता हूँ मैं

+ + +

सह्बा का कलाम पढ़ने के बाद अंदाज़ा होता है कि उनकी ज़बान सादा थी और वह बरजस्ता (अनायास) शेर कहने का हुनर रखते थे। वह अपनी बात कहने के लिये भारी भरकम अल्फ़ाज़ का चुनाव भी नहीं करते थे, बल्कि जैसा सोचते, उसे वैसा ही प्रस्तुत करने का हुनर रखते थे। लेकिन इसके बावजूद शेरियत (कवित्व) को हाथ से नहीं जाने देते। यही कारण है कि जिगर जैसा महान शायर भी उनसे प्रभावित था। कहते हैं कि जिगर मुरादाबाद में होते थे तो वह सह्बा साहब को अपनी नशिस्तों में ज़रूर बुलाते थे।

बीसवीं शताब्दी में
मुरादाबाद में ग़ज़ल का नुक्ता-ए-उरूज
अली सिकंदर 'जिगर' मुरादाबादी

मुरादाबाद में ग़ज़ल के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्ट होता है कि मुरादाबाद में ग़ज़ल की शुरूआत अट्ठारहवीं शताब्दी में हुई, और लाला नवलराय 'वफ़ा' ग़ज़ल के पहले बाक़ायदा सहिबे-दीवान शायर हुए। जबकि उन्नीसवीं सदी में ग़ज़ल के हवाले से एक बड़ा नाम 'ज़की मुरादाबादी' का मिलता है, जिन्होंने अपनी ज़हानत (प्रतिभा) व सलाहियतों (योग्यता) की बिना पर पूरे देश में शोहरत हासिल करली थी। इसी क्रम में तीसरा नाम बीसवीं सदी में अली सिकन्दर का है, जिन्हें साहित्यिक दुनिया जिगर मुरादाबादी के नाम से जानती है। हालाँकि इस शहर में 'ग़ालिब', 'मीर दद', मोमिन ख़ाँ 'मोमिन' और 'दाग़' देहलवी के शागिर्द भी रहे, लेकिन किसी को वह शोहरत हासिल नहीं हो सकी जो उपरोक्त वर्णित शायरों को हासिल हुई। इसकी वजह यह रही कि अन्य शायरों ने रिवायत को क़ायम रखते हुए ग़ज़ल के विकास में तो ज़रूर योगदान दिया, लेकिन कोई इज़ाफ़ा या नवीनता पैदा नहीं कर सके। जबकि वफ़ा, ज़की और जिगर-ये तीनों नाम ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी खुदादाद सलाहियतों की बिना पर ग़ज़ल को नई ऊँचाईयों तक पहुँचाया। इसीलिये ये लोग अपने दौर के नुमाइंदा (प्रतिनिधि) शायर कहलाये। इनमें भी जो शोहरत, इज़्ज़त और बुलंदी 'जिगर' के हिस्से में आई, वह आज तक किसी अन्य को हासिल नहीं हो सकी। जिगर मुरादाबाद के पहले और अब तक के ऐसे आख़िरी शायर हैं जिनकी शख़्सियत ही ग़ज़ल का पर्याय बन गई। आज साहित्यिक दुनिया में अगर मुरादाबाद की पहचान किसी शायर से होती है तो वह यक़ीनन हज़रते जिगर मुरादाबादी हैं।

जिगर की शोहरत क्यों?

यह सवाल पैदा होना स्वभाविक है कि जो शोहरत जिगर को मिली, वह किसी दूसरे को क्यों नहीं मिल सकी?

जिगर से पहले मुरादाबाद में सैकड़ों शायर गुज़रे, जिनमें से कई अपने समय में बड़े मशहूर हुए और उनका जुड़ाव नवाबों के दरबारों से भी रहा। इन सब शायरों ने महबूब (प्रेयसी) के हुस्न पर तवज्जोह दी, उसके सौन्दर्य का वर्णन किया और इश्क़ व आशिक़ी की बातें कीं। दूसरे विषय जिन पर उस दौर की शायरी का दारोमदार था, वे हैं आध्यात्मिक चिन्तन या सूफ़ीज़्म, दुनिया की नापायेदारी (अस्थायित्व) और नैतिकता का पाठ। इन शायरों में अगर कोई फ़र्क़ मिलता है तो वो ज़बान और बयान का फ़र्क़ है या फिर अपनी उस्तादी प्रमाणित करने के लिये सनाये, बदाये, तश्बीह व इस्तेआरा वग़ैरा (अर्थालंकार, शब्दालंकार, उपमा, रूपक आदि) का सहारा लिया जाता था और जिस शायर के वहाँ ये चीज़े ज़्यादा सुसज्जित व सुनियोजित तरीक़े से होती थीं उसी को बड़ा और उस्ताद शायर माना जाता था। इस भीड़ से जो बचकर निकल गया और जिसने अपने विवेक से कुछ नया किया, वही अपने युग का नुमायाँ शायर हुआ, ऐसे शायरों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। इसी शृंखला में बीसवीं शताब्दी में जिगर का नाम आता है।

'जिगर' की विशेषता यह है कि उनकी शायरी में कोई दर्शन नहीं है बल्कि व्यावहारिकता है। वह सुनी सुनाई बातों पर शायरी नहीं करते बल्कि उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ देखा, सोचा, समझा, और जो कुछ उनके साथ घटित हुआ, उसे अपने शेरों में पेश करने की कोशिश की।

तकल्लुफ़ से, तसन्नो से बरी है शायरी अपनी
हक़ीक़त शेर में जो है, वही है ज़िंदगी अपनी

उनकी शायरी और उनकी ज़िंदगी दो अलग-अलग चीज़े नहीं हैं, बल्कि जो उनकी ज़िंदगी है, वही शायरी है और जो उनकी शायरी है, वही उनकी ज़िंदगी है। उन्होंने अपने मजमूए 'शोला-ए-तूर' में लिखा भी है कि :

'' मुझे अपने शेरो-अदब पर सबसे बड़ा फ़ख़्र (गर्व) यह है कि मेरी ज़िंदगी और मेरी शायरी में बिल्कुल मुताबक़त (समानता) हैं, तज़ाद (विरोधाभास) नहीं। ''

जिगर ने अपनी पूरी ज़िंदगी हुस्न (सौन्दर्य) व इश्क़ (प्रेम) में बसर की और विभिन्न मंज़िलों और पड़ावों से गुज़रे। शुरू में उनका झुकाव हुस्न की तरफ़ ज़्यादा रहा, फिर उन्होंने दोनों को बराबरी (समानता) का महत्व दिया लेकिन जैसे-जैसे हुस्न की बेरुख़ी और बेवफ़ाई देखी, वह उससे दूर होते चले गये और उन्हें यह अहसास होता चला गया कि हुस्न सदा रहने वाला नहीं, बल्कि एक न एक दिन ढलने वाला और ख़त्म होने वाला (नाशवान) है, क्योंकि वह भौतिक चीज़ है। लेकिन प्रेम कभी ख़त्म नहीं होता, क्योंकि वह एक अदृश्य और आध्यात्मिक भाव है। अत: अमर है। जिसके आगे हुस्न खुद नतमस्तक हो जाता है। शायद इसीलिये वह कह उठते हैं:

इश्क़ ला-महदूद जब तक रहनुमा होता नहीं
ज़िंदगी से ज़िंदगी का हक़ अदा होता नहीं

लेकिन यह इतना आसान भी नहीं, क्योंकि :

यह इश्क़ नहीं आसाँ, बस इतना समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूबके जाना है

\+ + +

हालाँकि हुस्न और इश्क़ का विषय कोई नया नहीं था, बल्कि यह विषय तो हर शायर और कवि के यहाँ मिलता है, लेकिन जिगर ने अपने चिन्तन से इसमें जो नवीनता पैदा की, उसने जिगर को शायरी की दुनिया में अमर कर दिया।

ऐसा भी नहीं है कि जिगर ने इश्क और आशिक़ी के अलावा कुछ और नहीं किया हो या किसी दूसरे विषय पर ध्यान न दिया हो। बल्कि उक्त विषय के बाद दूसरे विषय जो जिगर की शायरी में हमें मिलते हैं उनमें तसव्वुफ़ (सूफ़ीज़्म), ख़म्रयात (मदिरापान), सियासत और

इंसानियत (मानवता) आदि प्रमुख है। यह अलग बात है कि इन विषयों में भी वह प्रेम और मोहब्बत के भाव को ही परवान चढ़ाते नज़र आते हैं।

जिगर ने ग़ज़ल के अलावा हम्द (ईशवन्दना), नात (पैग़मबर सल- लल्लाहो-अलैहि-वसल्लम की महिमा का वर्णन) और नज़्में भी कहीं, जो अपना अलग साहित्यिक महत्व रखती हैं और उनके कुल्लियात (समस्त काव्य संग्रह) में 'लम-आते-तूर' के नाम से शामिल हैं। लेकिन इनकी संख्या ग़ज़लों के मुक़ाबले बहुत कम है। जिगर ने उर्दू के अलावा फ़ारसी में भी शायरी की, जो उनके कुल्लियात में ''बादा-ए-शीराज़'' के नाम से शामिल है।

जिगर के मजमुआ-ए-कलाम (काव्य संग्रह):

जिगर के कलाम के तीन संग्रह उनके जीवन में ही प्रकाशित हो गये थे। जबकि कुछ कलाम उनके इन्तक़ाल के बाद प्रकाशित हुआ। वर्तमान में यह समस्त कलाम 'कुल्लियाते-जिगर' के नाम से उपलब्ध है। विभिन्न संग्रहों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

(1) **दागे़-जिगर :** यह जिगर का पहला संग्रह था, जो 1922 ई. में मिर्ज़ा अहसान अहमद एडवोकेट (आज़मगढ़) ने प्रकाशित किया था, जिसमें 1903 ई. से 1921 ई. तक का कलाम शामिल था।

(2) **शोला-ए-तूर :** यह जिगर का दूसरा संग्रह था, जो 1932 ई. में अलीगढ़ से प्रकाशित हुआ। वास्तव में यह जिगर के कलाम का इन्तेख़ाब था, जो असग़र गौंडवी ने किया। लेकिन जिगर को पसंद नहीं आया, लिहाज़ा नवाब सय्यद अली हसन ख़ाँ (भोपाल हाउस, लखनऊ) ने जिगर की पसंद के मुताबिक़ 1934 ई. में पुनः प्रकाशित किया।

(3) **आतिशे-गुल :** यह जिगर का तीसरा संग्रह था, जो पहली बार 1954 ई. में पाकिस्तान से छपा। इसका दूसरा ऐडिशन कुछ नई ग़ज़लों और संशोधनों के साथ ख़ुद जिगर ने 1958 ई. में लखनऊ से प्रकाशित किया, जिस पर जिगर को साहित्य अकादमी की तरफ़ से 5000 रुपये का इनाम मिला।

(4) **यादे-जिगर :** 1958 ई. के बाद जिगर ने जो कुछ कलाम कहा था, वह उनके इन्तक़ाल के बाद जिगर के सबसे पहले शोधकर्ता डा. मो. इस्लाम ने ' **यादे-जिगर**' के नाम से प्रकाशित किया।

नस्र (गद्य) में जिगर का कोई विशेष काम नहीं मिलता, सिवाये उन मज़मूनों के जो उन्होंने कुछ ख़ास लोगों की फ़रमाइश पर उनकी किताबों पर लिखे, लेकिन उन्हें आज तक संग्रहित नहीं किया गया है। 'जिगर' के ख़तों (पत्रों) का संग्रह उनके ख़ास प्रशंसक तस्कीन कुरैशी ने ''मकातीब-ए-जिगर'' के नाम से 1962 में प्रकाशित किया था।

जिगर का जीवन परिचय

जिगर की पैदाइश 6 अप्रैल 1890 ई. को मुरादाबाद के एक प्रतिष्ठित परिवार में, मोहल्ला लालबाग़ में हुई। जहाँ इनका परिवार हमेशा से रहता आया था। जिसका प्रमाण वह मस्जिद है जो जिगर के पूर्वज मौलवी मोहम्मद अमीन साहब के नाम से 'अमीन साहब वाली मस्जिद' मशहूर है। अलबत्ता जिगर की माँ बनारस की रहने वाली थीं, शायद इसी वजह से किसी ने जिगर की पैदाइश बनारस में लिखी है, जोकि ग़लत है।

जिगर का खानदान शहर का सम्मानित ख़ानदान था। शेरो-शायरी और अदबी माहौल जिगर को बचपन से मिला। इनके पिता मोहम्मद अली नज़र, चाचा अली ज़फ़र, ताया अली अकबर, दादा हाफ़िज़ मोहम्मद अमजद और परदादा हाफ़िज़ मोहम्मद नूर भी शायर थे।

'जिगर' की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। फ़ारसी मुरादाबाद के मशहूर शायर मुईन-उद-दीन 'नुज़हत' से पढ़ी। बचपन में ही वालिद का इंतक़ाल हो गया था। अत: चाचा अली ज़फ़र, जोकि बाँदा में पुलिस इंस्पेक्टर थे, इन्हें बाँदा ले गये और वहाँ के किसी स्कूल में दाख़िल कर दिया। कुछ समय बाद उनका तबादला लखनऊ हुआ तो जिगर भी उनके साथ लखनऊ आ गये और क्रिश्चियन कालेज में दाख़िल हुए।

जहाँ जिगर ने नवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद इनकी स्कूली शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकी, लेकिन घर के माहौल और बुज़ुर्गों की संगत से जिगर ने सामाजिक रिश्तों और नैतिक मूल्यों को जिस प्रकार से आत्मसात किया, वह अपनी मिसाल आप है। हज़रते 'असग़र गौंडवी' का इसमें विशेष योगदान रहा, जिनका वर्णन जिगर ने अपनी शायरी में कई जगह किया है। जैसे:

यूँ तो होने को 'जिगर' और भी हैं अहले कमाल
ख़ास है हज़रते असग़र से अक़ीदत मुझको

+ + +

क्योंकर बहार शेर से टपके न ऐ जिगर
रंगे कलामे-हज़रते-'असग़र' नज़र में है

+ + +

बदन से जान भी हो जायेगी रुख़सत 'जिगर' लेकिन
न जायेगा ख़याले हज़रते-'असग़र' मिरे दिल से

+ + +

हरीमे-हुस्ने-मानी है 'जिगर', काशाना-ए-'असग़र'
जो बैठो, बा-अदब होकर, तो उट्ठो बा-ख़बर होकर

+ + +

असग़र से जिगर के इतने गहरे सम्बंधों की वजह से यह बात मशहूर हो गयी कि 'जिगर', 'असग़र' के शागिर्द थे, हालाँकि 'जिगर' नैसर्गिक शायर थे। शायरी का यह शौक़ उन्हें अपने ख़ानदानी माहौल से मिला था। उन्होंने नौ वर्ष की उम्र से शायरी शुरू कर दी थी और चौदह वर्ष की उम्र में 'क़तील' देहलवी की ज़मीन में पहली फ़ारसी ग़ज़ल कही थी, जिसे देखकर उनके वालिद ने कहा था कि ''तुम शेर ज़रूर कहोगे, लेकिन अभी शायरी शुरू मत करना।''। लेकिन अपने इस जज़्बे को रोक पाना जिगर के हाथ में नहीं था, बल्कि यह जज़्बा और बढ़ता गया। अब जिगर ने यह महसूस किया कि उन्हें कोई उस्ताद बनाना चाहिये। अत: उस दौर के मशहूर उस्ताद शायर 'दाग़' देहलवी के पास

अपनी एक ग़ज़ल भेजी, लेकिन यह रिश्ता क़ायम नहीं हो सका, क्योंकि 1905 ई. में दाग़ का इंतक़ाल हो गया। इसके बाद वह 'रसा रामपुरी' के शागिर्द हुए।

जिगर बचपन से ही कुछ ला-उबाली और लापरवाह क़िस्म के थे। लड़कपन में घर से भागकर आगरा पहुँच गये। वहाँ ग़लत संगत में पड़कर पीने पिलाने की आदत पड़ गई, जेब खर्च के लिये चश्मों का काम शुरू कर दिया। यहाँ वहीदन नाम की एक औरत से इश्क़ हो गया और उससे शादी कर ली। शादी के बाद अपनी बीवी को लेकर मुरादाबाद आ गये। यहाँ चश्मों के एक बड़े कारोबारी से जिगर के कारोबारी सम्बंध हो गये और जिगर साहब उसके एजेंट बनकर शहर-शहर जाने लगे। इधर उनकी बीवी और उस कारोबारी के बीच प्रेम सम्बंध हो गये। कुछ दिन सब सामान्य चला, लेकिन जब जिगर को कुछ संदेह हुआ तो उन्होंने दोनों को रंगे हाथों पकड़ लिया। इस घटना के बाद से जिगर की शराब-नोशी और बढ़ गई:

जिगर की बादा-कशी इन दिनो मआज़-अल्लाह
जब आप देखेंगें गर्क़ शराब देखेंगे

इसके बाद जिगर घूमते-फिरते गौंडा पहुँचे, जहाँ 'असग़र' साहब से इनकी मुलाक़ात हुई। वह एक उदार स्वभाव के आध्यात्मिक व्यक्ति थे, उन्होंने जिगर को ढाढ़स बँधाया और मनोबल बढ़ाया। सबसे पहला काम उन्होंने यह किया कि जिगर की शायरी की क़द्रो-क़ीमत को समझा और यह तय किया कि अगर जिगर किसी मुशायरे में जायेंगे तो कन्वीनर पहले उनके नज़राने के पचास रुपये असग़र के पास जमा करेगा, फिर जिगर मुशायरे में शरीक होंगे। इस तरह जिगर की आमदनी का स्रोत खुला। और, यहीं से शायरों के लिये नज़राने की प्रथा पड़ी। असग़र ने दूसरा काम यह किया कि अपनी साली नसीम बेगम से जिगर का निकाह कर दिया। लेकिन जिगर के ला-उबाली मिज़ाज की वजह से यह रिश्ता भी बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रहसका और तलाक़ हो गई।

जिगर फिर जगह जगह भटकते हुये मैनपुरी पहुँचे, जहाँ शीराज़न नाम की एक गायिका थीं, जो बड़ी मुहज़्ज़ब (सभ्य), पढ़ी लिखी और अच्छे ख़ानदान की औरत थीं। वह जिगर की शायरी को पसंद करती थीं और उनकी ग़ज़लें बड़े ख़ूबसूरत अंदाज़ में मस्त और बेखुद होकर गाती थीं। जिगर तो वैसे भी हुस्न के दीवाने थे, अत: उन से मुहब्बत करने लगे। शीराज़न जिस कोठी में रहती थीं उसे जिगर साहब 'तूर' कहकर पुकारते थे। इसी निस्बत से जिगर के एक मजमूए का नाम भी 'शोला-ए-तूर' है, और अपने एक शेर में भी कहा है कि:

हुजूमे तजल्ली से मामूर होकर
नज़र रह गयी 'शोला-ए-तूर' होकर

जिगर साहब ने मैनपुरी में बड़ा वक़्त गुज़ारा। शीराज़न अच्छे चाल-चलन की नेक, दीनदार और अदब-नवाज़ औरत थीं। उन्होंने आख़िरी उम्र में हज भी कर लिया था और अपने मकान में एक मदरसा खोल दिया था।

जिगर मैनपुरी से अलीगढ़, कानपुर आदि होते हुए उन्नाव पहुँचे, जहाँ जगतमोहन लाल 'रवाँ' ने उन्हें सहारा दिया और इनकी ख़ूब ख़ातिर-दारी की। इस बीच असग़र गौंडवी का इन्तक़ाल होगया। जिगर साहब ने गौंडा पहुँचकर नसीम बेगम से दुबारा निकाह की ख़्वाहिश ज़ाहिर की, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया और शराब छोड़ने को कहा। जिगर ने पहले शराब छोड़ी और फिर अपने पीर (आध्यात्मिक गुरु) से अपनी ख़्वाहिश ज़ाहिर की, (संयोग से नसीम, असग़र और जिगर, तीनों के पीर एक ही थे।) पीर साहब ने नसीम बेगम से कहा कि वह दुबारा निकाह करलें, अत: उन्होंने पीर के आदेश पर जिगर से दुबारा निकाह कर लिया, और जिगर कह उठे कि:

मुद्दत के बाद आज तो मौजे-नसीम ने
टूटे हुये दिलों को भी मसरूर कर दिया

+ + +

काम आख़िर जज़्बा-ए-बेइख़्तियार आही गया
दिल कुछ इस सूरत से तड़पा, उनको प्यार आही गया

+ + +

जिगर ने इस मौक़े पर एक नज़्म भी लिखी जिसका शीर्षक है ''तज्दीदे मुलाक़ात'' अर्थात पुनर्मिलन। वह कहते हैं:

मुद्दत में वो फिर ताज़ा मुलाक़ात का आलम
ख़ामोश अदाओं में वो जज़्बात का आलम

+ + +

इसके बाद जिगर, नसीम साहिबा से बेहद मोहब्बत करने लगे थे। उन्हें अपने से दूर नहीं करते थे, जहाँ जाते उन्हें अपने साथ लेकर जाते थे। कई बार मुरादाबाद भी लेकर आये। हज के लिये भी अपने साथ लेकर गये। जिगर और नसीम का यह रिश्ता उनकी ज़िन्दगी के आख़िरी लमहों तक क़ायम रहा, यहाँ तक कि 9 सितम्बर 1960 ई. को जिगर यह दुनिया छोड़कर चले गये।

जान ही दे दी जिगर ने आज पाय-ए-यार पर
उम्रभर की बेक़रारी को क़रार आ ही गया

+ + +

दिल को क़रार रूह को आराम आ गया
मौत आ गयी कि दोस्त का पैग़ाम आ गया

+ + +

शायद यह उनकी मोहब्बत का ही असर था कि मरने के बाद भी नसीम का वतन नहीं छूटा और वहीं इनकी आख़िरी आराम गाह (अन्तिम विश्राम स्थली) यानी मज़ार बना। जहाँ जिगर के चाहने वाले आते हैं, जिगर से अपनी मोहब्बत और आस्था का इज़हार करते हैं और फ़ातेहा पढ़ते हैं।

जिगर का हुलिया और लिबास :

जिगर कुर्ता या क़मीज़, चूढ़ीदार पायजामा और शेरवानी पहनते थे। ठण्ड के मौसम में सफ़र पर जाते तो शेरवानी के ऊपर ओवर कोट भी पहन लेते थे। सर पर बालों वाली ऊँची सी काली टोपी और पैरों में सामान्य रूप से काले या कभी-कभी बादामी रंग के जूते पहनते थे। जूतों में फ़ीतों की जगह चेन लगवाना पसंद करते थे ताकि चढ़ाने उतारने में आसानी हो। टोपी इस तरह ओढ़ते कि कुछ बाल टोपी के बाहर लटके रहते थे। मुशायरा पढ़ते वक़्त वह अक्सर टोपी उतार भी देते थे। बाल लम्बे होने की वजह से गज़ल पढ़ते वक़्त वह चेहरे पर लटक जाते थे, जिन्हें वह हल्का से झटका देकर पीछे कर लेते। कुर्ते पर पान की पीक के धब्बे होते। जवानी में घनी फ़्रेंच दाढ़ी थी जो उम्र के साथ साथ बढ़ती गई। शेरवानी के ऊपर वाली जेब में चश्मा और नीचे की जेबों में सिग्रेट, पानों की डिब्बी और छाली का बटुआ आदि होता था।

ज़ोए अंसारी ने 1940 ई. के बाद का हुलिया बयान करते हुए लिख है कि ''जिगर का चेहरा सियाह, दाढ़ी और सर के बाल सफ़ेद हो चले थे। शेरवानी पर पीक के धब्बे, पाजामे का रंगीन कमरबन्द घुटने तक लटका हुआ, चेहरे पर उलझे हुए ख़यालात की परछाईं और होंटों पर बे-इख़्तियार तबस्सुम, यह था उनका हुलिया। वह हर पहलू से अच्छे लगते थे। नर्म-गुफ़्तार, कम-गो, बे-ज़रर, दूरो नज़दीक के लोगों का लिहाज़ करने वाले। दूसरों का इतना अदब करते कि हर कोई उनका अदब करने पर मजबूर हो जाये।''

कहा जा सकता है कि उनका चेहरा-मोहरा और हुलिया व लिबास देखकर कोई भी शख़्स उन्हें पहचान सकता था कि यह जिगर मुरादाबादी हैं।

जिगर का शराब पीना और तौबा करना:

जिगर ने लड़कपन में शराब पीना शुरू की और बाद में उनकी ज़िंदगी में कुछ ऐसे उतार-चढ़ाव आते रहे कि उनके इस शौक़ में दिन-

बदिन बढ़ोतरी होती रही। डा. मोहम्मद इस्लाम लिखते हैं कि हालत यह हो गयी थी कि जिगर कई-कई दिन खाने को हाथ नहीं लगाते थे, सिर्फ़ शराब पर गुज़र करते थे।

पूछना क्या, कितनी वुसअत मेरे पैमाने में है
बस उलट दे साक़िया जितनी भी मयख़ाने में है

+ + +

तू साक़ी-ए-मयख़ाना है, मैं रिंदे-बलानोश
मेरे लिये मयख़ाने को पैमाना बनादे

+ + +

प्रो. मोहम्मद हसन ने लिखा है कि (इतनी ज़्यादा शराब पीने के बाद भी) आम शराबियों की तरह किसी ने जिगर को नशे की हालत में आपे से बाहर होते या गालियाँ बकते नहीं देखा, बल्कि इस हालत में वह और ज़्यादा मुहज़्ज़ब (सभ्य) नज़र आते थे। बड़ों, छोटों और हमउम्रों का पूरा ध्यान रखते थे। शायद इसी लिये उन्होंने कहा है कि:

पीने वाले एक ही दो हों तो हों
मुफ़्त सारा मयकदा बदनाम है

+ + +

रिंद जो मुझको समझते हैं, उन्हें होश नहीं
मयकदा साज़ हूँ मैं, मैयकदा बर-दोश नहीं

+ + +

क्या जिगर से आप भी वाक़िफ़ नहीं
एक ही तो रिंदे मय-आशाम है

+ + +

जिगर आदत से मजबूर होकर शराब पी तो लेते थे, साथ ही शर्मिंदा भी होते थे। बहरहाल एक वक़्त ऐसा भी आया कि जिगर ने शराब से हमेशा के लिये तौबा करली। यह 1939 ई. की बात है। जैसा कि लिखा जा चुका है कि जब जिगर ने अपनी चहीती बीवी नसीम से दुबारा निकाह करना चाहा तो उन्होंने मना कर दिया, क्योंकि इसी आदत से परेशान होकर उन्होंने तलाक़ ली थी। लेकिन जब वह अपने पीर के

कहने से दुबारा निकाह के लिये राज़ी हुईं तो उन्होंने यह शर्त रखी कि जिगर शराब छोड़े। लिहाज़ा पीर की नज़र और नसीम की मोहब्बत का असर था कि जिगर ने शराब से हमेशा के लिये तौबा करली।

जिगर अपनी शायरी और अख़लाक़ की वजह से पहले ही से लोगों के दिलों में घर बनाये हुए थे, शराब छोड़ने के बाद जिगर की अज़मत व इज़्ज़त में और चार चाँद लग गये। उस समय के बड़े बड़े आलिम और नामवर लोग उनकी इज़्ज़त करने लगे और अपने पास बैठाने लगे। शायद इसी मौक़े पर जिगर ने कहा था कि :

नंगे-मयख़ाना था मैं, साक़ी ने ये क्या कर दिया
पीने वाले कह उठे, या पीरे-मयख़ाना मुझे

(जिगर बड़ी विनम्रता से कहते हैं : मैं ऐसा शराबी था कि मेरी वजह से मयख़ाना (शराबख़ाना) बदनाम था। लेकिन आज मेरे साक़ी यानी रूहानी शराब पिलाने वाले (पीर) ने यह क्या कर दिया कि सब पीने वाले गौरवान्वित होकर मुझे अपना पीर कह रहे है। यानी मुझे इज़्ज़त दे रहे हैं।)

शराब छोड़ने के बाद जिगर का स्वास्थय बिगड़ गया। जिस्म पर काले धब्बे पड़ गये, दिल कमज़ोर हो गया और वह तरह तरह के रोगों में घिर गये, लेकिन शराब को हाथ नहीं लगया।

लेकिन, एक बार जब जिगर भोपाल हाउस में ठहरे हुये थे। वहाँ जोश मलीहाबादी पहुँचे और जिगर को किसी बहाने से एक कमरे में ले जाकर शराब पीने पर मजबूर कर दिया।

इक जाम आख़िरी तो पीना है और साक़ी
अब दस्ते-शौक़ कांपें या पाँव लड़खड़ायें

+ + +

जिगर ने शराब तो पी ली मगर जब उन्हें होश आया तो बड़े शर्मसार और परेशान हुये, कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया, बहुत रोये-गिड़गिड़ाये और ख़ुदा से माफ़ी माँगी। उस वक़्त वहाँ मौलाना अब्दुलबारी साहब मौजूद थे, उन्होंने जिगर की यह हालत देखी तो कहा

कि 'मालूम होता है, जिगर ख़राब है, दिल अच्छा है।' नज़्म ''शिकस्ते-तौबा'' उसी दौर में कही गयी।

बे-कैफ़ियों के कैफ़ से घबराके पी गया
तौबा को तोड़-ताड़ के थर्रा के पी गया
ऐ रहमते-तमाम! मेरी हर ख़ता मुआफ़
मैं इन्तेहाए शौक़ में घबरा के पी गया

+ + +

इसके बाद जिगर ने फिर कभी शराब को हाथ नहीं लगाया। यहाँ तक कि डॉक्टर के कहने पर भी नहीं। क्योंकि पहले शराब उनकी ज़ीस्त (जिंदगी) थी, शराब के बग़ैर वह ज़िंदा नहीं रह सकते थे। लेकिन अब उन्हें रूहानियत (अध्यात्म) का ऐसा चस्का लग चुका था। जो ख़ुद नशे से कम नहीं था। शायद इसीलिये उन्होंने कहा:

पहले शराब ज़ीस्त थी, अब ज़ीस्त है शराब
कोई पिला रहा है, पिये जा रहा हूँ मैं

+ + +

जिगर का अख़लाक़ और ऐहतरामे इंसानियत

जिगर आदर्शवादी इंसान थे और अख़लाक़ी क़द्रों (नैतिक मूल्यों) का बहुत ध्यान रखते थे। ज़िंदगी का कोई भी दौर रहा हो, जिगर ने अख़लाक़ और मैयार (आदर्श) को हाथ से नहीं जाने दिया। वह दूसरों की इज़्ज़त व सम्मान का बहुत ख़याल रखते थे, ख़ुद तकलीफ़ उठाते लेकिन दूसरे को ठेस नहीं लगने देत। यही वे ख़ूबियाँ हैं जो उन्हें दूसरे शायरों से अलग पहचान प्रदान करती है। उनकी जिंदगी के ऐसे बहुत से वाक़यात हैं जो यह साबित करते हैं कि जिगर जैसा इंसान सदियों में पैदा होता है।

एक बार जिगर, मुरादाबाद में कैफ़ साहब के यहाँ रुके, रात को मुशायरा पढ़कर आये, नशे में धुत। कुछ रक़म कैफ़ साहब से गिनवाकर शेरवानी की जेब में रखी और लेट गये। इत्तेफ़ाक़ से एक

दूसरे साहब भी वहाँ मौजूद थे। जिगर साहब के लेटने के बाद उन्होंने यह सोचकर कि जिगर सो गये हैं, वह रक़म उनकी जेब से निकाल ली। जिगर साहब यह सब कुछ देख रहे थे, लेकिन उन्हें न रोका, न ही टोका। दूसरे दिन सुबह को जिगर साहब को वापस जाना था। उन्होंने कैफ़ साहब से कुछ पैसे उधार माँगे। कैफ़ साहब ने कहा कि हज़रत! रात तो आपके पास अच्छी ख़ासी रक़म थी। जिगर साहब ने कहा कि वह किसी ज़रूरतमंद ने निकाल ली। कैफ़ साहब सारा माजरा समझ गये और उन साहब को बुरा-भला कहने लगे। यह सुनकर जिगर साहब ने कहा- उनसे कुछ मत कहना, वह मेरे ख़ास आदमी हैं, मुझे उनसे शर्मिंदगी होगी।

एक बार जिगर ट्रेन में सैकण्ड क्लास में सफ़र कर रहे थे। इत्तेफ़ाक़ से मौलाना अली मियाँ भी उसी डिब्बे में सवार थे, दोनों का साथ हो गया। जिगर साहब ने देखा कि कोई साहब मौलाना के पास बार-बार आते हैं, जिगर साहब ने अपने पास से पैसे देकर उन साहब का टिकट भी सैकण्ड क्लास का करा दिया। मौलाना अली मियाँ जिगर के इस अख़लाक़ से बहुत प्रभावित हुए और उनके दिल में जिगर की अज़मत ने यहाँ तक घर किया कि यह वाक़या उन्होंने अपनी किताब 'पुराने चराग़' में लिखा है। उन्होंने यह भी लिखा है कि जिगर कभी -कभी शैक्षिक संस्थानों की माली मदद भी करते थे। बल्कि जोए अंसारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि अगर कोई व्यक्ति जामिया मिल्लिया या नदवतुल-उलामा, को चंदा भेज कर, उसकी रसीद जिगर को भेज देता, जो जिगर साहब उस मुशायरे में ज़रूर पहुंचते थे।

ये वाक़यात साबित करते हैं कि जिगर इंसानियत नवाज़ी और मान मर्यादा का ही ध्यान नहीं रखते थे बल्कि इल्मो-अदब और शैक्षिक गतिविधियों में भी दिलचस्पी रखते थे। यही वजह है कि वह दिन -ब-दिन नैतिक मूल्यों के पतन और इंसानियत के गिरते मैयार (स्तर) से चिन्तित रहते थे, जिसका ज़िक्र उनके शरों में भी मिलता है।

वरना क्या था सिर्फ़ तरतीबे अनासिर के सिवा
ख़ास कुछ बेताबियों का नाम इंसाँ हो गया

+ + +

जह्ले-ख़िरद ने दिन ये दिखाये
घट गये इंसाँ बढ़ गये साये

+ + +

रिंदी के लिये है, न इबादत के लिये है
इंसान मोहब्बत है, मोहब्बत के लिये है

+ + +

घटे अगर तो बस इक मुश्ते-ख़ाक है इंसाँ
बढ़े तो वुसअते-कौनैन में समा न सके

+ + +

अर्श तक हो नहीं सकती जो रसाई न सही
यही इंसान का मेराज है, इंसाँ हो जाये

+ + +

आदमी के पास सबकुछ है मगर
एक तनहा आदमीयत ही नहीं

+ + +

हुस्ने-सूरत के, न हसरत के, न अरमानों के
उफ़् कि इंसान हैं मारे हुए इंसानों के

+ + +

क्या क़यामत है कि इस दौरे-तरक़्क़ी में जिगर
आदमी से आदमी का हक़ अदा होता नहीं

+ + +

अब कहाँ इंसाँ, जिसे इंसाँ कहें
चलती-फिरती देखलो परछाइयाँ

+ + +

यही है ज़िंदगी तो ज़िंदगी से ख़ुदकुशी अच्छी
कि इंसाँ आलमे इंसानियत पर बार हो जाये

+ + +

जिगर का पैग़ामे मोहब्बत :

जिगर की शायरी का एक बड़ा विषय मोहब्बत का पैग़ाम भी है। वह घुटन व नफ़रत की जगह मोहब्बत और प्रेम का माहौल क़ायम करना चाहते हैं। वह ऐसी सियासत से भी दूर रहने का मशविरा देते हैं, जो नफ़रत और दूरियाँ पैदा करती है, क्योंकि:

आजकल मयख़ाने में तक़्सीम होते हैं 'जिगर'
ज़हर के साग़र शराबे-ज़िंदगी के नाम से

+ + +

उनका जो फ़र्ज़ है वो अहले-सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मोहब्बत है जहाँ तक पहुँचे

+ + +

जिगर क्योंकि इंसानियत नवाज़ थे, उनके यहाँ ज़ात-मज़हब कोई हैसयित नहीं रखता था। वह सबको एक नज़र से देखते और हर शख़्स के ग़म को अपना ग़म समझते थे। वह किसी भी तरह के भेदभाव के मुख़ालिफ़ थे। इसीलिये तो कहते हैं:

जिगर की है ज़िंदगी मोहब्बत, नहीं है उसको किसी से नफ़रत
जिगर के है दिल में सबकी इज़्ज़त, जिगर है यारों का यार अब भी

+ + +

यारो-अग़्यार से मोहब्बत है
गुल तो गुल, ख़ार से मोहब्बत है

+ + +

गुलशन-परस्त हूँ, मुझे गुल ही नहीं अज़ीज़
काँटों से भी निबाह किये जा रहा हूँ मैं

+ + +

जिगर के कुछ मशहूर शेर

किस किसपे जान दीजिये, किस किसको चाहिये
गुम हो गये हैं बज़्मे-तमन्ना में आके हम

+ + +

सफ़्फ़ाक चितवनें भी हैं, क़ातिल नज़र भी है
क्या चीज़ हो गये हो तुम्हें कुछ ख़बर भी है

+ + +

वफ़ा पर दिल को सदक़े, जान को नज़्रे-जफ़ा करदे
मोहब्बत में ये लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़ना करदे

+ + +

जिगर बताइये कुछ हाले-ज़ार, ख़ैर तो है
ये क्यों बरसती हैं मायूसियाँ निगाहों से

+ + +

इक हुस्न का दरिया है, इक नूर का तूफ़ाँ है
इस पैकरे ख़ाकी में, ये कौन ख़रामाँ है

+ + +

तूने ही जिगर इसको मिट्टी में मिलाया है
वरना ये तिरा दिल था इक आईना-ए-नूरी

+ + +

कूचा-ए-इश्क़ से बाहर वो निकल जाये 'जिगर'
जीते जी ख़ाक में मिलना जिसे मंज़ूर न हो

+ + +

हाय ये मजबूरियाँ, महरूमियाँ, नाकामियाँ
इश्क़ आख़िर इश्क़ है, तुम क्या करो, हम क्या करें

+ + +

शिकस्ते-हुस्न का जल्वा दिखाके लूट लिया
निगाह नीची किये, सर झुकाके लूट लिया

+ + +

जज़्बे-जुनूँ ने आज तो गुल ही नया खिला दिया
खुद वो गले लिपट गये, इश्क़ का वास्ता दिया

+ + +

इधर से भी है सिवा कुछ उधर की मजबूरी
कि हमने आह तो की, उनसे आह भी न हुई

+ + +

ये नाज़े-हुस्न तो देखो कि दिल को तड़पाकर
नज़र मिलाते नहीं मुस्कराये जाते हैं

+ + +

सब कुछ हुआ मगर न खुला आज तक ये राज़
तुम जाने-आरज़ू हो कि हम जाने-आरज़ू

+ + +

अब क्या उमीद रक्खूँ, ऐ हुस्ने-यार तुझसे
तूने जो मुस्करा कर दीवाना कर दिया है

+ + +

इश्क़ है प्यारे खेल नहीं है
इश्क़ है कारे शीशा-ओ-आहन

+ + +

अल्लाह अल्लाह इश्क़ की रानाइयाँ
हुस्न खुद लेने लगा अँगड़ाईयाँ

+ + +

जब इश्क़ अपने मरकज़े-असली पे आ गया
खुद बन गया हसीन, दो आलम पे छा गया

+ + +

तिरे इश्क़ की करामत ये अगर नहीं तो क्या है
कभी बेअदब न गुज़रा मिरे पास से ज़माना

+ + +

यूँ भी हो काश ग़मे-इश्क़ की तासीर 'जिगर'
मैं तमन्ना न करूँ और वो तमन्नाई हो

+ + +

तौहीने-इश्क़ देख न हो, ऐ 'जिगर' न हो
हो जाये दिल का ख़ून मगर आँख तर न हो

+ + +

इश्क़ की वुसअतें ख़ुदा की पनाह
हौसला चाहिये वफ़ा के लिये

+ + +

तिरी ख़ुशी से अगर ग़म में भी ख़ुशी न हुई
वो ज़िंदगी तो मोहब्बत की ज़िंदगी न हुई

+ + +

ये क्या मुक़ामे इश्क़ है ज़ालिम कि इन दिनों
अक्सर तिरे बग़ैर भी आराम आ गया

+ + +

मैं हूँ और दश्ते-ग़म का सन्नाटा
कोई आवाज़ दूर-दूर नहीं

+ + +

मोहब्बत में इक ऐसा वक़्त भी दिल पर गुज़रता है
कि आँसू ख़ुश्क हो जाते हैं, तुग़यानी नहीं जाती

+ + +

हो गयी दिल को तिरी याद से इक निस्बते-ख़ास
अब तो शायद ही मयस्सर कभी तनहाई हो

+ + +

जो हर नफ़स के साथ न लाये पयामे-दोस्त
हर्गिज़ वो मेरी शाम, वो मेरी सहर नहीं

+ + +

बग़ौर देख लो अन्दाज़ मेरे मिटने का
ये सानेहा न कभी फिर नज़र से गुज़रेगा

+ + +

क्या बताऊँ इश्क़ ज़ालिम क्या क़यामत ढाये है
ये समझ लो जैसे दिल सीने से निकला जाये है

+ + +

जान उन पर निसार करता हूँ
प्यार की तरह प्यार करता हूँ

+ + +

आती है मौत मंज़िले-मक़सूद देखकर
इतने हुए क़रीब कि हम दूर हो गये

+ + +

जुज़ तिरे कुछ नज़र नहीं आता
आरज़ू हो गई मुजस्सम क्या

+ + +

हँसी फिर उड़ने लगी इश्क़ के फ़साने की
नक़ाब उठाओ पलट दो फ़ज़ा ज़माने की

+ + +

आस्तीनों का वो चढ़ा लेना
गोरी-गोरी कलाइयाँ तौबा

+ + +

मुझी में रहे मुझसे मस्तूर होकर
बहुत पास निकले बहुत दूर होकर

+ + +

वही गुल है, वही बुलबुल, वही परवाना है
शान है एक, मगर रंग जुदागाना है

+ + +

कसरत में भी वह्दत का तमाशा नज़र आया
जिस रंग में देखा तुझे यकता नज़र आया

+ + +

किसलिये जान देते हैं, रिंद शराबे-नाब पर
पूछ न रोज़ मोहतसिब, थोड़ी सी आज पीके देख

+ + +

ऐ मोहतसिब न फेंक, मिरे मोहतसिब न फेंक
ज़ालिम शराब है, अरे ज़ालिम शराब है

+ + +

मह्वे-तस्बीह तो सब हैं, मगर इदराक कहाँ
ज़िंदगी ख़ुद ही इबादत है, मगर होश नहीं

+ + +

कामिल रहबर, क़ातिल रहज़न
दिल-सा दोस्त, न दिल-सा दुश्मन

+ + +

ज़िंदगी है नाम जुहदो-जंग का
मौत क्या है, भूल जाना चाहिये

+ + +

कभी उन मदभरी आँखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं

+ + +

आ पड़ा कुछ वक़्त ऐसा गर्दिशे-अय्याम से
ज़िंदगी शर्मा रही है ज़िंदगी के नाम से

+ + +

पासे-अदब से छुप न सका राज़े-हुस्नो-इश्क़
जिस जा तुम्हारा नाम सुना सर झुका दिया

+ + +

मौत क्या, एक लफ़्ज़े-बे-मानी
जिसको मारा हयात ने मारा

+ + +

ये मिसरा काश नक़्शे हर दरो-दीवार हो जाये
जिसे जीना हो मरने के लिये तैयार हो जाये

+ + +

बैठे हम हर बज़्म में लेकिन
झाड़ के उट्ठे अपना दामन

+ + +

मौत की नींद छाई जाती है
कह चुका मैं फ़साना-ए-ग़म क्या

+ + +

दिल रख दिया है सामने लाकर ख़ुलूस से
आगे अब इसके काम तुम्हारी नज़र का है

+ + +

किसी ने फिर न सुना दर्द के फ़साने को
मिरे न रहने से राहत हुई ज़माने को

+ + +

सभी अन्दाज़े-हुस्न प्यारे हैं
हम मगर सादगी के मारे हैं

+ + +

इश्क़ को बे-नक़ाब होना था
आप अपना जवाब होना था

+ + +

यूँ दिल के तड़पने का, कुछ तो है सबब आख़िर
या दर्द ने करवट ली, या तुमने इधर देखा

+ + +

कटेगी शबे-ग़म बड़ी राहतों से
तिरी याद होगी तिरा ध्यान होगा

+ + +

पाँव उठ सकते नहीं मंज़िले-जानाँ के ख़िलाफ़
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं

+ + +

है यही ऐन दोस्ती, अपनी तरफ़ से ऐ 'जिगर'
दस्ते-करम बढ़ाये जा, ग़ैर की दुश्मनी न देख

+ + +

निगाहों से छुपकर कहाँ जाइयेगा
जहाँ जाइयेगा हमें पाइयेगा
हमीं जब न होंगे तो क्या रंगे-महफ़िल
किसे देखकर आप शरमाइयेगा

+ + +

इश्क़ जब तक न कर चुके रुस्वा
आदमी काम का नहीं होता
दिल हमारा है या तुम्हारा है
हमसे यह फ़ैसला नहीं होता

+ + +

दरिया की ज़िंदगी पर सदक़े हज़ार जानें
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना

+ + +

आ कि तुझ बिन इस तरह ऐ दोस्त घबराता हूँ मैं
जैसे हर शै में किसी शै की कमी पाता हूँ मैं
हाय रे मजबूरियाँ तर्के मोहब्बत के लिये
मुझको समझाते हैं वो उनको समझाता हूँ मैं
एक दिल है और तूफ़ाने हवादिस ऐ 'जिगर'
एक शीशा है कि हर पत्थर से टकराता हूँ मैं

+ + +

मिरी तलब भी उसी के करम का सदक़ा है
क़दम ये उठते नहीं हैं, उठाये जाते हैं

+ + +

इलाही एक दिल है तू ही इसका फ़ैसला करदे
वो अपना दिल बताते हैं, हम अपना दिल समझते हैं

+ + +

जो न काबे में है महदूद न बुतख़ाने में
हाय वो और इक उजड़े हुए काशाने में
हरम-ओ-दैर में रिंदों का ठिकाना ही न था
वो तो यह कहिये अमाँ मिल गयी मयख़ाने में
आप देखें तो सही रब्ते मोहब्बत क्या है
अपना अफ़साना मिला कर मिरे अफ़साने में

+ + +

इक लफ़्ज़े मोहब्बत का अदना ये फ़साना है
सिमटे तो दिले आशिक़ फैले तो ज़माना है
हम इश्क़ के मारों का इतना ही फ़साना है
रोने को नहीं कोई, हँसने को ज़माना है
क्या हुस्न ने समझा है, क्या इश्क़ ने जाना है
हम ख़ाक-नशीनों की ठोकर में ज़माना है
आँखों में नमी सी है, चुप-चुप से वो बैठे है
नाज़ुक सी निगाहों में, नाज़ुक सा फ़साना है
ये इश्क़ नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है
आँसू तो बहुत से हैं आँखों में 'जिगर' लेकिन
बिंध जाये सो मोती है, रह जाये सो दाना है

+ + +

दिल गया, रौनक़े-हयात गयी
ग़म गया सारी कायनात गयी

+ + +

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले दिल
हम वो नहीं कि जिनको ज़माना बना गया
मेरा कमाले शेर बस इतना है ऐ जिगर!
वो मुझपे छा गये मैं ज़माने पे छा गया

+ + +

दीवानगी हो, अक़्ल हो, उम्मीद हो कि यास
अपना वही है, वक़्त पे जो काम आगया

+ + +

कहने को अहले इल्म की कोई कमी नहीं
लेकिन ख़ुद अपनी फ़िक्र, ख़ुद अपनी नज़र कहाँ
हर चंद कायनाते दो आलम में ऐ जिगर!
इंसाँ ही एक चीज़ है, इंसाँ मगर कहाँ

+ + +

जो हक़ की ख़ातिर जीते हैं, मरने से कहीं डरते हैं 'जिगर'
जब वक़्ते शहादत आता है, दिल सीनों में रक़साँ होते है

+ + +

हमको मिटा सके, ये ज़माने में दम नहीं
हम से ज़माना ख़ुद है, ज़माने से हम नहीं

+ + +

भूल जाऊँ कि मेरा फ़र्ज़ मोहब्बत क्या है
इस तरह तो न मिरी हौसला अफ़ज़ाई हो

+ + +

ख़ुद अपनी आग में जलती है शम्अ जलने दो
पराई आग में जलना है कारे मरदाना

+ + +

उनसे मिलने को तो क्या कहिये 'जिगर'
ख़ुद से मिलने को ज़माना चाहिये

+ + +

वो अदाये दिलबरी हो कि नवाए आशिक़ाना
जो दिलों को फ़त्ह करले, वही फ़ातहे ज़माना
तिरे इश्क़ की करामत ये अगर नहीं तो क्या है
कभी बे अदब न गुज़रा मिरे पास से ज़माना
मैं वो साफ़ ही न कह दूँ जो है फ़र्क मुझमें तुझमें
तिरा दर्द दर्दे तनहा, मिरा ग़म ग़मे ज़माना

+ + +

नहीं जाती कहाँ तक फ़िक्रे इंसानी नहीं जाती
मगर अपनी हक़ीक़त आप पहचानी नहीं जाती
सदाक़त हो तो दिल सीनों से खिंचने लगते है वाइज़
हक़ीक़त ख़ुद को मनवा लेती है, मानी नहीं जाती

+ + +

जान कर मिन जुमला ख़ासाने मयख़ाना मुझे
मुद्दतों रोया करेंगे जामो पैमाना मुझे

+ + +

अगर न ज़ोहरा जबीनों के दरमियाँ गज़रे
तो फिर ये कैसे कटे ज़िंदगी, कहाँ गुज़रे
उसी को कहते जन्नत, उसी को दोज़ख़ भी
वो ज़िंदगी जो हसीनों के दरमियाँ गुज़रे
बहुत हसीन सही सोहबतें गुलों की मगर
वो ज़िंदगी है जो कांटों के दरमियाँ गुज़रे

+ + +

हर इक जानो-तन में समाता चला जा
मोहब्बत की बस्ती बसाता चला जा
मोहब्बत, मोहब्बत, मोहब्बत, मोहब्बत
कोई धुन हो यह गीत गाता चला जा

+ + +

संदर्भ-ग्रंथ

इतिहास एवं आलोचना–

1. 1857 के मुजाहिद शोअरा : इमदाद साबरी, मक्तबा शाहरा, देहली।
2. 1857 के ग़द्दार शोअरा : इमदाद साबरी, मक्तबा शाहरा, देहली।
3. तारीख़े-अदब उर्दू : सैयदा जाफ़र, ज्ञानचंद जैन, एन.सी.पी.यू.एल. नई दिल्ली।
4. उर्दू अदब की तारीख़ (भाग-10) : प्रो. अंसारुल्लाह, एन.सी.पी.यू.एल. नई दिल्ली।
5. तारीख़े सहाफ़ते उर्दू (भाग-3) : इमदाद साबरी, जदीद प्रिंटिंग प्रस, देहली।
6. शोअरा-ए-मुरादाबाद की अदबी ख़िदमात : डा. फ़हमीदा ख़ान, इदारा-ए-ज़बानो-अदब, मुरादाबाद।
7. तारीख़े कठे रुहेलखण्ड : ख़ुदादाद ख़ाँ, मुर्तज़ा प्रेस, रामपुर स्टेट।
8. असरारिया-कशफ़े सूफ़िया : मिस्बाह अहमद सिद्दीक़ी, एन.सी.पी.यू.एल. ।
9. मुख़बिरे-आलम और तहरीके-आज़ादी : इमदाद साबरी, कराची (पाकिस्तान)।
10. तज़्किरा-ए-माहोसाल : मालिकराम, मकतबा-ए-जामिआ, देहली।
11. मुरादाबाद के इतिहास की एक झलक : बी. एस. भटनागर, मुरादाबाद।
12. आमाल-नामा : सर रज़ा अली, हिन्दुस्तानी पब्लिशर, देहली।
13. तारीख़े शाहजहाँ : बनारसी प्रसाद सक्सैना, एन.सी.पी.यू.एल. नई दिल्ली।
14. मकातीबे-जिगर : तस्कीन क़ुरैशी, मलिक एंड को. पब्लिशर, देहली।

तज़्किरे–

1. उर्दू के हिंदू मसनवीनिगार : अता उल्ला पालवी, साहित्य एकेडमी, दिल्ली।
2. इंतख़ाबे-यादगार : अमीर मीनाई, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
3. तज़्किरा-ए-हिंदी : मुस्हफ़ी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
4. तज़्किरा-ए-बोलाई : जन्नतनिशाँ, मुरादाबाद।
5. ख़ुमख़ाना-ए-जावेद : लाला श्रीराम, दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।
6. सुख़न-ए-शोअरा : नस्साख़, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
7. शोअरा-ए-हुनूद : बुद्धप्रकाश जौहर देवबंदी, महबूब प्रेस देवबंद।
8. शोअरा-ए-रुहेलखंड : शायां बरेलवी, फ़रहान पब्लिकेशंस, कराची।
9. सुब्हे-गुलशन : मोहम्मद हसन ख़ाँ, मतबा शाहजहानी, भोपाल।
10. क़सीदानिगाराने-उत्तरप्रदेश : अली जव्वाद ज़ैदी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
11. गुलिस्ताने-सुख़न : साबिर बख़्श, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
12. गुलशने-बेख़ार : नवाब मुस्तफ़ा ख़ां शेफ़्ता, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
13. गुलशने-हिंद : मिर्ज़ा अली लुत्फ़, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।

14. मग़ज़ने-निकात : क़ायम चाँदपुरी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
15. आसारुश-शोअरा-ए-हुनूद: देबीप्रसाद 'बशशाश' मतबा रिज़वी, देहली।
16. तलामिज़ा-ए-ग़ालिब: मालिक राम, मरकज़े तसनीफ़ो-तालीफ़, निकोदर, पंजाब।
17. रोज़े-रौशन : मोहम्मद ज़फ़र हुसैन, मतबा शाहजहानी, भोपाल।
18. तबक़ात-उश-शोअरा : निसार अहमद फ़ारूक़ी, मजलिसे-तरक़्क़-ए-अदब, लाहौर।
19. गुलदस्ता-ए-सहाफ़त : इमदाद साबरी, नौमानी प्रेस, देहली।
20. महबूब-उज़्ज़मन: मोहम्मद अब्दुलजब्बार, मतबा-ए-रहमानी, हैदराबाद।
21. शोअरा-ए-अमरोहा : मिस्बाह अहमद सिद्दीक़ा, रज़ा लायब्रेरी, रामपुर।

काव्य-संग्रह–

1. मदीहे-वक़ार : लाला पीतमराय, मतला-उल-उलूम, मुरादाबाद।
2. दीवाने वक़ार : किशनकुमार 'वक़ार', मतबा नवलकिशोर, लखनऊ।
3. अख़्तरे जदीद :किशनकुमार 'वक़ार', मतबा नवलकिशोर, लखनऊ।
4. दीवाने-शौकत : क़ाज़ी शौकत हुसैन, मतबा नय्यरे आज़म, मुरादाबाद।
5. दीवान नाला-ए-तमन्ना : तमन्ना मुरादाबादी, मतबा अमजद अली, मुरादाबाद।
6. कुल्लियाते निज़ाम : राना मुरादाबादी, मतबा नवलकिशोर, लखनऊ।
7. गुंचा-ए-राग : मरदान अली ख़ाँ 'राना' मतबा इफ़्तेख़ार, देहली।

पत्रपत्रिकाएँ-

1.	ख़वाने-ख़लील, मुरादाबाद	1888 ई.
2.	मुख़्बिरे-आलम, मुरादाबाद	1905 ई.
3.	मुख़्बिरे-आलम, मुरादाबाद	1909 ई.
4.	मुख़्बिरे-आलम, मुरादाबाद	1911 ई.
5.	हयाते उर्दू, मुरादाबाद	1912 ई.
6.	मुख़्बिरे-आलम, मुरादाबाद	1920 ई.
7.	अल-क़मर, मुरादाबाद	1932 ई.
8.	संकल्प, नगर निगम मुरादाबाद	2011 ई.

लेखक-परिचय

नाम : डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन
पिता : श्री ज़ाहिद हुसैन
जन्मतिथि : 19 जुलाई, 1972
शिक्षा : बी.एस-सी., बी.एड.,
एम.ए. (उर्दू), पी-एच.डी.

प्रकाशित पुस्तकें-

1. हनीफ़ क़ुरैशी का तआरुफ़ (2002)
2. फ़ाज़िल बरेलवी : हयात और ख़िदमात (2004)
3. आरिफ़ हसन ख़ां : शख़्सियत और ख़िदमात (2013)
4. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शोअरा (2015)
5. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर (2016-हिंदी में)
6. सदरुल अफ़ाज़िल और फ़न्ने-शायरी (2016)
7. तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद (उन्नीसवीं सदी तक) (2020)
8. मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र (2020) हिंदी में

शीघ्र प्रकाश्य-

1. मुरादाबाद में नातगोई की रिवायत
2. मज़ामीने-कैफ़ मुरादाबादी
3. सरमाया-ए-ख़ावर (ख़ावर मुरादाबादी का नातिया मजमूआ)
4. ख़वातीने-मुरादाबाद की इल्मी और अदबी ख़िदमात
5. स्वतंत्रता संग्राम और मुरादाबाद (1857 ई. से 1947 ई. तक)
6. उलामा-ए-मुरादाबाद
7. सूफ़िया-ए-मुरादाबाद

सम्मान-

1. उ.प्र. उर्दू अकादमी से प्रशस्ति पत्र (2009 ई.)
2. मरकज़ी जमायते अहले सुन्नत का फ़ख़्रे-मिल्लत एवार्ड (2017 ई.)

संपर्क-

टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद-244001
मोबाइल : 84105-44252
email : masifh86@gmail.com

गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	गुनगुनी धूप (ग़ज़ल-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	100/-
2.	मन की सतह पर (गीत-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	100/-
3.	जीवन के परिदृश्य (नाटक-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	75/-
4.	सैलाब (कविता-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
5.	उसकी ओर (भक्तिगीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
6.	थिरकन (कविता-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
7.	पद्मावत (काव्य) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
8.	शील माहात्म्य (काव्य) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
9.	दर्द (गीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
10.	महक (गीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
11.	बूँद-बूँद (मुक्तक-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
12.	प्रपात (निबंध व नाटक-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
13.	गुरुग्रंथसाहब में सामाजिक चेतना : डा. मेघसिंह 'बादल'	250/-
14.	दर्पण (काव्य-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	100/-
15.	शंकरानंद भजनावली : शंकरानंद अयोध्यानाथ ब्रह्मचारी, सं. डा. मेघसिंह 'बादल'	25/-
16.	दर्द पतझड़ का (ग़ज़ल-संग्रह) : डा. मीना नक़वी	100/-
17.	संसार हमारा है (ग़ज़ल-संग्रह) : ओंकारसिंह 'ओंकार'	100/-
18.	कसक (ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार'	150/-
19.	फ़िक्रे-जमील (ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार'	100/-
20.	एक ख़ास शाम - एक ख़ास सुबह (कविता-संग्रह) : रमाशंकर सिंह	75/-
21.	भीमकथा (काव्य) : डा. बलवीर सिंह	150/-
22.	ज्योतिर्मय जनार्दन : डा. रमेशचंद्र यादव 'कृष्ण'	1100/-
23.	शून्य के मुखौटे (कविता-संग्रह) : आनंद कुमार 'गौरव'	100/-
24.	प्यार की प्यास (काव्य-संग्रह) : उदयप्रकाश सक्सेना 'अस्त'	100/-
25.	दोस्ती की धूप (ग़ज़ल-संग्रह) : शिवराज सिंह 'प्रीतम'	100/-
26.	कैवल्य ज्ञानी भगवान जंभेश्वर जी : बलवीर सिंह	50/-
27.	रहगुज़र (ग़ज़ल-संग्रह) : अक़ील नोमानी	100/-
28.	युगप्रवर्तक-भारतरत्न डा. भीमराव अम्बेडकर : डा. मेघसिंह 'बादल'	250/-
29.	श्वासों के सप्तम् (गीत-ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'सार्थक'	100/-
30.	उपवन (कविता-संग्रह) : शिवराज सिंह 'प्रीतम'	100/-
31.	नेह के अंकुर (गीत-ग़ज़ल-कविता-संग्रह) : सतीश 'सार्थक'	150/-

32. प्रेम की सरिता (काव्य-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 100/-
33. सहमत नहीं हूँ (ग़ज़ल-संग्रह) : पारसनाथ बुलचंदानी 100/-
34. सीता-व्यथा (काव्य-संग्रह) : रामपाल सिंह 100/-
35. प्यार के दीप (ग़ज़ल-संग्रह) : ओंकार सिंह 'ओंकार' 100/-
36. युगों की प्रतीक्षा (काव्य-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 125/-
37. जलते हुए सवाल (आज़ाद शेर) : पारसनाथ बुलचंदानी 150/-
38. उगा है फिर नया सूरज (ग़ज़ल-संग्रह) : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 200/-
39. बात बोलेगी (साक्षात्कार-संग्रह) : योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' 300/-
40. आहट है गलियारे में (ग़ज़ल-संग्रह) : प्रो. ओम 'राज़' 200/-
41. कुछ मैं भी कह लूँ (काव्य-संग्रह) : अविनाश चंद्र मिश्र 'चंद्र' 200/-
42. मुट्ठीभर ज़िंदगी (कहानी-संग्रह) : रामानुज मिश्र 100/-
43. हिन्दी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर' : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 595/-
44. भीगे नयन (काव्य-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार' 150/-
45. मैं लौटूँगा एक दिन (कविता-संग्रह) : करन सिंह 100/-
46. झरीं नीम की पत्तियाँ (दोहा-गीत-संग्रह) : देवदत्त प्रसून 200/-
47. दर्पणों ने जब कहा (काव्य-संग्रह) : विवेक 'निर्मल' 150/-
48. काश... (ग़ज़ल-संग्रह) : ताहिर 'फ़राज़' 200/-
49. व्याकरण ग़ज़ल का : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 150/-
50. हवा के टुकड़े : गोविन्द 'गुलशन' 150/-
51. समर्पण : अनुराग गौतम 200/-
52. तिश्नगी ही तिश्नगी : आर.एन. सक्सेना 'गुलशन' बरेलवी 150/-
53. रिश्ते बने रहें : योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' 200/-
54. कालचक्र : रामपाल सिंह 150/-
55. मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर : डा. मो. आसिफ़ हुसैन 200/-
56. Indirect Tax Laws : Dr. Nikhil Ranjan Agrawal 250/-
57. ख़ाली हाथ कबीर : मधुकर अष्ठाना 300/-
58. शब्दों की मायानगरी में : टिल्लन वर्मा 150/-
59. लोक व्यवहार एवं स्त्री विमर्श : संदीप कुमार 'सचेत' 200/-
60. पहने हुए धूप के चेहरे : मधुकर अष्ठाना 300/-
61. जागो मोहन जागो अकबर : टिल्लन वर्मा 200/-
62. बला है इश्क़ : अलका मिश्रा 200/-
63. रे मन चल सपनों के गाँव : ममता शर्मा 'अंचल' 200/-
64. कल्पना के कल्पित मोती : डा. कल्पना सिंह 100/-
65. मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र : डा. मो. आसिफ़ हुसैन 200/-

●●

लेखक-परिचय

नाम : डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन
पिता : श्री ज़ाहिद हुसैन
जन्मतिथि : 19 जुलाई, 1972
शिक्षा : बी.एस-सी., बी.एड.,
एम.ए. (उर्दू), पी-एच.डी.

प्रकाशित पुस्तकें-

1. हनीफ़ क़ुरैशी का तआरुफ़ (2002)
2. फ़ाज़िल बरेलवी : हयात और ख़िदमात (2004)
3. आरिफ़ हसन ख़ाँ : शख़्सियत और ख़िदमात (2013)
4. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शोअरा (2015)
5. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर (2016-हिंदी में)
6. सदरुल अफ़ाज़िल और फ़न्ने-शायरी (2016)
7. तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद (उन्नीसवीं सदी तक) (2020)
8. मुरादाबाद में ग़ज़ल का सफ़र (2020-हिंदी में)

शीघ्र प्रकाश्य-

1. मुरादाबाद में नातगोई की रिवायत
2. मज़ामीने-कैफ़ मुरादाबादी
3. सरमाया-ए-ख़ावर (ख़ावर मुरादाबादी का नातिया मजमूआ)
4. ख़वातीने-मुरादाबाद की इल्मी और अदबी ख़िदमात
5. स्वतंत्रता संग्राम और मुरादाबाद (1857 ई. से 1947 ई. तक)
6. उलामा-ए-मुरादाबाद
7. सूफ़िया-ए-मुरादाबाद

सम्मान- 1. उ.प्र. उर्दू अकादमी से प्रशस्ति पत्र (2009 ई.)
2. मरकज़ी जमायते अहले सुन्नत का फ़ख़्रे-मिल्लत एवार्ड (2017 ई.)

संपर्क- टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद-244001
मोबाइल : 84105-44252

गुंजन प्रकाशन
मुरादाबाद (उ.प्र.)-244001

9789380753485